संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

र्ष : १०
क : ८६
वरी २०००

॥ ऋषि प्रसाद ॥

हिन्दी

महाशिवरात्रि - ४ मार्च २०००
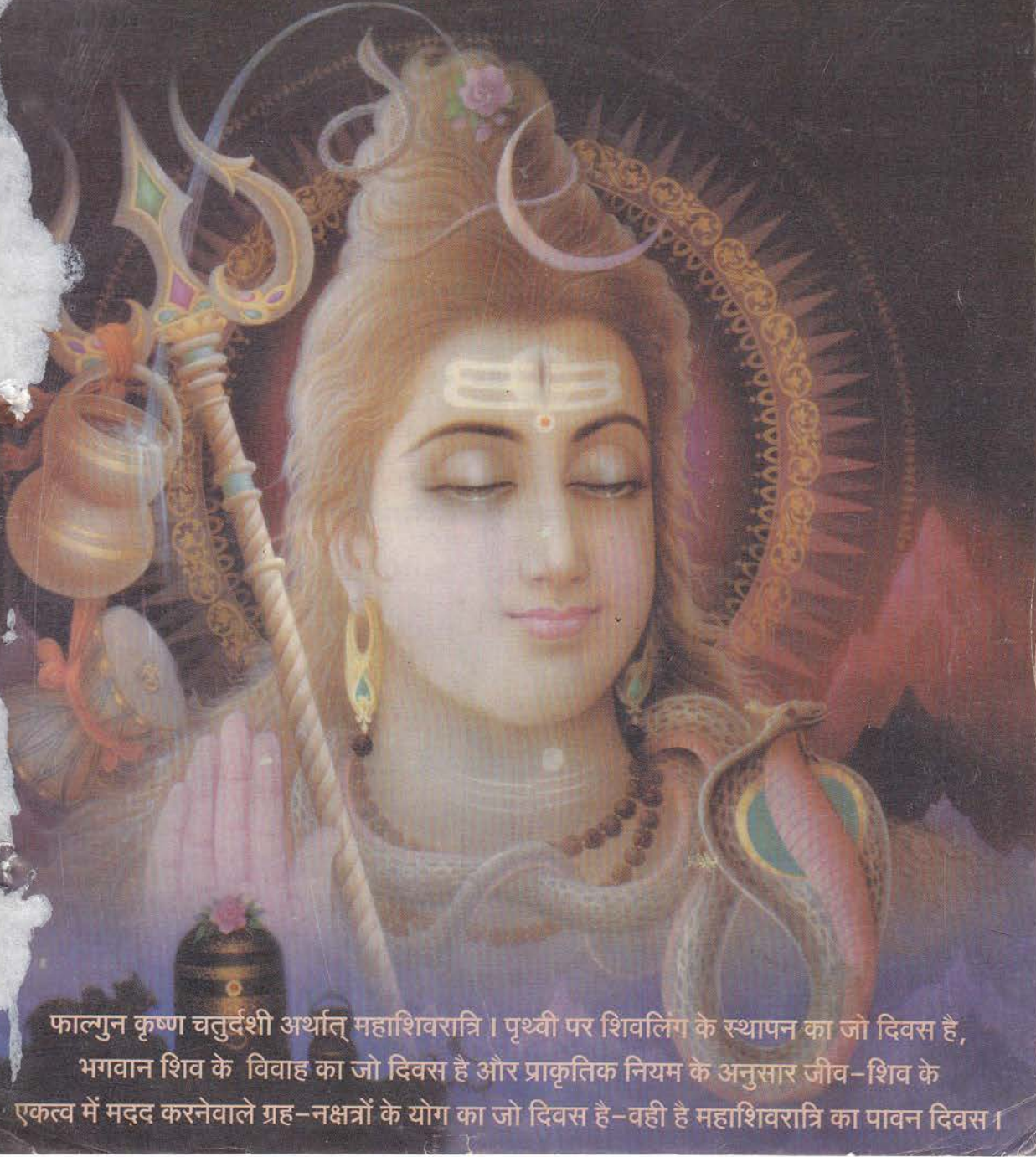
फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी अर्थात् महाशिवरात्रि। पृथ्वी पर शिवलिंग के स्थापन का जो दिवस है, भगवान शिव के विवाह का जो दिवस है और प्राकृतिक नियम के अनुसार जीव-शिव के एकत्व में मदद करनेवाले ग्रह-नक्षत्रों के योग का जो दिवस है-वही है महाशिवरात्रि का पावन दिवस।

वर्ष : १०
अंक : ८६
९ फरवरी २०००

सम्पादक : क. रा. पटेल
प्रे. खो. मकवाणा

मूल्य : रू. ६-००

सदस्यता शुल्क

भारत में

(१) वार्षिक : रू. ५०/-
(२) पंचवार्षिक : रू. २००/-
(३) आजीवन : रू. ५००/-

नेपाल व भूटान में

(१) वार्षिक : रू. ७५/-
(२) पंचवार्षिक : रू. ३००/-
(३) आजीवन : रू. ७५०/-
(डाक खर्च में वृद्धि के कारण)

विदेशों में

(१) वार्षिक : US $ 30
(२) पंचवार्षिक : US $ 120
(३) आजीवन : US $ 300

कार्यालय
'ऋषि प्रसाद'
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आसारामजी आश्रम
साबरमती, अमदावाद-३८०००५.
फोन : (०७९) ७५०५०१०, ७५०५०११.

प्रकाशक और मुद्रक : क. रा. पटेल
श्री योग वेदान्त सेवा समिति,
संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा, साबरमती, अमदावाद-३८०००५ ने पारिजात प्रिन्टरी, राणीप, अमदावाद एवं विनय प्रिन्टिंग प्रेस, अमदावाद में छपाकर प्रकाशित किया।

अनुक्रम

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्रव्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें।

ज्ञान की सात भूमिकाएँ

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

दो प्रकार के संस्कारी मनुष्य होते हैं : धार्मिक और जिज्ञासु।

यह बात उन मनुष्यों की नहीं है जो केवल खाने-पीने और संतति को जन्म देने में ही अपना जीवन पूरा कर देते हैं। ऐसे लोगों को तो मनुष्य रूप में पशु ही कहा गया है। **मनुष्यरूपेण मृगाश्चरंति** । यह संसारी मानवों की बात है।

जिन्हें धार्मिक संस्कार मिलते हैं, वे आगे चलकर जिज्ञासु हो सकते हैं। धार्मिक व्यक्ति पहले तो धर्म के कार्य करता है। स्वर्गादि पाने के लिये वह तप, दान, यज्ञ आदि करता है। आगे चलकर उसे महसूस होता है कि 'स्वर्ग भी तो आसक्ति पैदा करेगा और न जाने कितने जन्मों में भटकायेगा।' ऐसा विचार करके धार्मिक व्यक्ति जिज्ञासु बन जाता है। जिज्ञासु को ऐसे विचार आते हैं : ' मैं ऐसी वस्तु पा लूँ कि दुबारा दुःखद गर्भवास में न पड़ूँ।' भोग-प्रलोभनों में फँसनेवालों से बड़ी उँची समझ का धनी होता है जिज्ञासु। वह ज्ञान की प्रथम भूमिका 'शुभेच्छा' में प्रवेश पा लेता है।

"तुम स्वामिनारायणवाले बनोगे, तभी भगवान मिलेंगे।"
"यह संप्रदाय कब बना ?"
"२०० वर्ष हुए।"
"२०० वर्ष पहले भगवान नहीं थे क्या ?"
मुझे उनकी बातें गले नहीं उतरीं। मत-पंथ और संप्रदाय की बातों में साधक नहीं फँसता।

१. शुभेच्छा : भोगेच्छाओं, वासनाओं को मिटाने की, जन्म-मरण से छूटने की जो आकांक्षा है, वह 'शुभेच्छा' है। इस भूमिकावाला जिज्ञासु अहंकार पोसने के लिये कर्म नहीं करता। वह व्यवहार में कुशल एवं मितभाषी होता है। प्रशंसा उसे आतिशबाजी के अनार जैसी लगती है। वह मित्रों आदि के बीच भले रहे, पर भीतर से उदासीन रहता है। उसे सब फीका-फीका लगने लगता है। वह सत्शास्त्रों एवं संतों की संगति की इच्छा करता है।

कबीर, नानक, श्रीरामकृष्ण परमहंस, वर्धमान महावीर... शुरूआत में सबकी प्रथम भूमिका आती है। वर्धमान की माँ जब गुजर गयीं तो वर्धमान बोले : ''मैं जाता हूँ घर से।''

पिता ने कहा : ''अभी तो मैं शोक से भी नहीं उबरा हूँ और तुझे जाना है ?''

पिता की यह बात सुनकर वर्धमान रुक गये। कुछ समय के पश्चात् पिता भी चल बसे। वर्धमान ने पुनः कहा : ''मैं जाता हूँ।''

बड़े भाई ने कहा : ''पहले माँ चली गयीं, अभी पिता चल दिये। जब तक मैं जीवित हूँ, तब तक तुम जाने की बात मत करना।''

भाई की यह बात सुनकर वर्धमान ने फिर से घर छोड़कर जाने का नाम तो नहीं लिया, किन्तु वे ऐसे ढंग से जीवन जीने लगे कि नहीं के बराबर। अंततः उनके भाई ने ही कह दिया कि : ''घर में रहो अथवा जाओ। तुम्हें घर से कोई मतलब नहीं। तुम जा सकते हो।'' इस प्रकार उनके भाई ने उन्हें जाने की सम्मति दे दी।

पहली भूमिका प्राप्त होने पर आदमी लाख काम छोड़कर भी ईश्वर की ओर चलेगा। यदि पहली भूमिका नहीं प्राप्त हुई तो ईश्वर को छोड़कर लाख काम करेगा। पहली भूमिकावाले की आगे

की यात्रा यदि न हो और वह मर जाये तो स्वर्ग का सुख तो उसे सहज में ही मिल जाता है। प्रलोभन देनेवालों के चक्कर में वह नहीं फँसता। इतना ही नहीं, स्वर्गिक सुख में भी उसकी रुचि नहीं होती। अतः किसी श्रेष्ठ कुल में उसका जन्म होता है।

शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते।
अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्॥

'...योगभ्रष्ट पुरुष शुद्ध आचरणवाले श्रीमान् पुरुषों के घर में जन्म लेता है अथवा ज्ञानवान् योगियों के ही कुल में जन्म लेता है...'

(गीता : ६.४१,४२)

साधु-संतों के प्रति उसके हृदय में आदरभाव तो रहेगा लेकिन कोई ढोंगी साधु उसको ठग नहीं सकेगा।

मैं नौ साल का था। साधु-संतों में मेरी रुचि थी। एक दिन एक बाबा घूमता-घामता आया और उसने कई चमत्कार दिखाये। डंडे को पकड़कर दबाया तो पानी की धार निकल पड़ी। मेरे कुटुम्बियों ने तो 'जय गंगे माता' कहकर चरणामृत भी लिया, किन्तु मुझे हुआ कि सूखे डंडे में पानी कैसे ? यदि यह डंडे में से गंगा प्रगट कर सकता है तो इसको कपड़े-आटे की चिन्ता कैसी ? मैं छोटा था, इसलिए मेरी कोई गिनती ही नहीं थी, जिससे खूब बारीकी से जाँच करने में मैं सफल हो गया। मैंने ठीक से देखा तो पता चला कि उसने जल से भीगी हुई रूई को डंडे की पोल में छुपाकर रखा था। उसे दबाने पर वह गंगा होकर बहता था।

उसने ऐसा करके कइयों को उल्लू बनाया होगा किन्तु मेरे ऊपर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा जबकि मैं उस समय मात्र ९ वर्ष का ही था। बड़ा होने पर मुझे भाई ने, साले-सालियों ने, कुटुम्बियों ने, कइयों ने रोका किन्तु मैं सद्गुरु के पास पहुँचे बिना नहीं रहा। यह आसुमल की प्रशंसा नहीं कर रहा हूँ अपितु ज्ञान की भूमिका का प्रभाव बता रहा हूँ। प्रथम भूमिकावाले को अध्यात्म-पथ पर आगे बढ़ने से कोई रोक नहीं सकता।

जैसे प्यासे आदमी की प्यास शर्बत या पानी की बातें करने से नहीं बुझती एवं भूखे आदमी की भूख लड्डू की बातें करने से नहीं मिटती। ऐसे ही जिसको सत्य की प्यास है, प्रभुप्राप्ति की भूख है वह मत-पंथ की बातों में नहीं आयेगा, बल्कि आगे चल पड़ेगा।

शुभेच्छावाले जिज्ञासु को किसके आगे बैठना, कैसे बोलना, कैसे चलना आदि सत्प्रेरणा अपने-आप मिलती है। उसे अन्तःप्रेरणा होती है। उसका आचरण सुहावना होता है, दूसरों के लिये अनुकरणीय होता है। उसे भोगवासना से अरुचि पैदा होने लगती है, एकांत अच्छा लगने लगता है, जप-ध्यान में आनंद आता है। 'भगवान क्या है ? आत्मा क्या है ? जगत में हमारा वास्तविक कर्त्तव्य क्या है ?' इत्यादि की जिज्ञासाएँ उसमें उत्पन्न होती हैं।

२. सुविचारणा : जब शुभेच्छा बढ़ती है तो दूसरी भूमिका 'सुविचारणा' फलने लगती है। सत्शास्त्रों एवं महापुरुषों का संग करके, वैराग्य एवं अभ्यास से सदाचार में प्रवृत्त होना- इसका नाम सुविचारणा है। सुविचारणावाला साधक देवी-देवता, मूर्तिपूजा आदि में नहीं उलझता। इस भूमिका में कर्मकाण्ड, पूजा आदि घटते जायेंगे एवं आत्मज्ञान की बातों की ओर कुदरती आकर्षण होने लगेगा। तिलक न करते हुए भी वह साधु होगा, साधु के कपड़े न होते हुए भी उसका मन साधुताई की तरफ खिंचेगा। धर्म के रहस्य को जानने में उसकी रुचि होगी।

पहले साधनाकाल में जब मैं स्वामिनारायणवालों के पास गया तो उन्होंने कहा :

''तुम स्वामिनारायणवाले बनोगे, तभी भगवान मिलेंगे।'' जब उन्होंने यह कहा तो मैंने पूछा :

''स्वामिनारायण संप्रदाय कब बना ?''

उन्होंने कहा : ''२०० वर्ष हुए।''

मैंने पूछा : ''२०० वर्ष पहले इस जगत में

भगवान नहीं थे क्या ?''

इसका उत्तर वे न दे सके। मुझे उनकी बातें गले नहीं उतरीं, अतः मैं वहाँ से चल दिया।

मत-पंथ और संप्रदाय की बातों में पहली-दूसरी भूमिकावाला साधक नहीं फँसता है।

जिसको धार्मिक कहलाना है, वह किसी-न-किसी पंथ-संप्रदाय का हो जायेगा। हमारी सिंधी जाति के इष्ट भगवान झूलेलाल हैं तो मैं भी झूलेलाल के पंथ में रहता, लेकिन मेरी भूमिका बन गयी तो मैं फिर उसमें न रह पाया। जो मत-पंथ-संप्रदाय में रुके हैं और अपनेको उन्हींका मानते हैं तो समझ लो कि वे यात्रा करना नहीं चाहते हैं, जबकि पहली-दूसरी भूमिकावाले साधक उसमें नहीं रुकते।

'तनुमानसा' नामक तीसरी भूमिका के साधक में वेदान्त के विचार जमने लगेंगे कि : 'देह से आत्मा पृथक् है... मन-बुद्धि का वह द्रष्टा है।'

जैसे प्यासे आदमी की प्यास शर्बत या पानी की बातें करने से नहीं बुझती एवं भूखे आदमी की भूख लड्डू की बातें करने से नहीं मिटती। या तो उसे पानी पिलाओ, भोजन कराओ या वह स्वयं ही अन्न-जल खोज ले तभी उसकी तृषा-क्षुधा शांत हो सकती है। ऐसे ही जिसको सत्य की प्यास है, प्रभुप्राप्ति की भूख है वह मत-पंथ की बातों में नहीं आयेगा, बल्कि आगे चल पड़ेगा।

तीसरी भूमिका में आया हुआ व्यक्ति आत्म-साक्षात्कार के नितांत करीब होता है। इस भूमिका में यात्रा करते-करते यदि साधक का देहावसान हो जाता है तो जो लाखों रूपये खर्च करके अश्वमेध यज्ञ करते हैं, उनसे भी ऊँची गति उसकी होती है। तपस्वियों-मुनियों को जहाँ स्थान मिलता है ऐसे ब्रह्मलोक तक की उसकी यात्रा हो जाती है।

दूसरी भूमिकावाले को विचार आते रहते हैं कि : 'मेरे ऐसे दिन कब आयेंगे, जब मुझे परमात्म-प्राप्ति होगी ? मेरी ऐसी स्थिति कब होगी कि मैं सुख-दुःख में सम रहूँगा ?'

सुविचारणा में साधक को शास्त्राध्ययन की रुचि होगी।

घाटवाले बाबा के पिता तहसीलदार थे। वे काशी में रहते थे। घाटवाले बाबा १७-१८ साल के हुए तो उनमें शास्त्राध्ययन की रुचि जागी। वे चल पड़े गंगा किनारे। 'कोई संत मिलें... 'श्रीयोगवाशिष्ठ महारामायण' जैसा ग्रंथ सुनूँ... वेदान्त सुनूँ...' इस इच्छा से उन्होंने हिमालय तक की यात्रा की किन्तु कोई संत मिले नहीं। अंत में एक गृहस्थी हरिद्वार में मिला, जो हाथ में घड़ी बाँधता, खों-खों करता एवं 'हर की पौड़ी' पर पड़ा रहता था। वह हर रोज २-३ व्यक्तियों को 'श्रीयोगवाशिष्ठ महारामायण' सुनाता। घाटवाले बाबा ने भी वहाँ बैठे-बैठे 'श्रीयोगवाशिष्ठ महारामायण' सुना। वे क्रमशः दूसरी से तीसरी भूमिका में आ गये, तीसरी से चौथी भूमिका में आ गये और उन्हें ज्ञान हो गया।

जिसकी दूसरी भूमिका 'सुविचारणा' दृढ़ होगी, उसे एकांतवास और मौन अच्छा लगेगा, आत्मज्ञानी संतों के प्रति उसके मन में आकर्षण पैदा हो जायेगा। उसे मौन, जप, एकांत में रस आयेगा। भीड़-भड़ाके, शादी-ब्याह आदि में उसकी रुचि नहीं होगी। नदी-तालाब, गुफा-कंदरा उसे रुचेगी। आत्मज्ञान की बातें सुनने की उसे रुचि होगी। सद्गुण विकसित होने लगेंगे। जैसे, कामी व्यक्ति स्त्री पर लट्टू हो जाता है, अभागों को पापकर्म रसीले लगते हैं, सेठ को व्यापार-धंधे का चिंतन चलता रहता है, वैसे ही दूसरी भूमिकावाले साधक में त्याग, वैराग्य, प्रसन्नता, सहानुभूति, परोपकार, दया, दान, सेवा, सरलता आदि सद्गुण अपने-आप आने लगते हैं। जैसे सुवासित फूल खिलता है तो महक आने लगती है वैसे ही उपरोक्त सारे सद्गुण ऐसे साधक में स्वयं आने लगते हैं।

जब वह एकांत में संतों एवं शास्त्रों के वचन विचारता है तो उसमें ईश्वर को पाने की तड़प बढ़ती है। कभी-कभी उसे ध्यान में ईश्वर

की झलक मिलने लगती है। 'मैं यह देह नहीं हूँ। जो खाया-पीया है, उसीका रूपान्तरण यह देह है... यह देह मैं नहीं हूँ तो मैं कौन हूँ ? भगवान क्या हैं ? वे कैसे मिलें ? मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार आदि किसको कहते हैं ?' - ऐसे विचारों से अपने-आप उनका जवाब आयेगा, नहीं तो जवाब पाने की तड़प होगी। कोई उससे नीची भूमिकावाला उसको जवाब देगा तो उसके जवाब से उसे संतोष नहीं होगा । मान-अपमान की चोटें दिनोंदिन उसे कम प्रभावित करेंगी। संसार के प्रति आकर्षण घटने लगेगा। कभी-कभी काम, क्रोध, मोह आदि विकार आ जायेंगे तो उसको पश्चाताप होगा। वह एकांत में अपनेको मारेगा भी सही, रोयेगा भी कि 'अरे ! मुझसे ऐसा हो गया ?' वह भीतर से इतना स्वच्छ होता जायेगा।

३. तनुमानसा : दूसरी भूमिका परिपक्व होने पर तीसरी भूमिका 'तनुमानसा' प्रगट होने लगती है। 'शुभेच्छा' एवं 'सुविचारणा' करके बुद्धि सूक्ष्म होती है और इन्द्रियों के अर्थ में अनासक्ति होती है तो 'तनुमानसा' नामक भूमिका बनती है।

तीसरी भूमिका के साधक में वेदान्त के विचार जमने लगेंगे : 'देह से आत्मा पृथक् है... मन-बुद्धि का वह द्रष्टा है।' बुद्धि के निर्णय बदलते हुए दिखेंगे, मन के संकल्प-विकल्प बदलते हुए दिखेंगे, संसार की बदलाहट महसूस होने लगेगी और संसार का मान-अपमान उसके लिये फीका हो जायेगा। ईश्वर के सिवाय सारी दुनिया उसे एक तुच्छ खिलौनामात्र लगेगी।

वह जब एकांत में मौन होकर बैठेगा और विचार करने लगेगा तो निदिध्यासन होने लगेगा। उसके चित्त में अनोखी शांति, अनोखा आनंद प्रगट होने लगेगा और कभी-कभी वह जो कहेगा, होने लगेगा। जो होनेवाला है, उसका उसे पता चलने लगेगा। लेकिन यदि वह ईमानदारी से साधना कर रहा है तो वह उसे ज्यादा महत्त्व नहीं देगा, नहीं तो 'तुष्टि' नाम की अवस्था आ जायेगी। फिर ऐसा लगेगा कि : 'जो जानना था, सो जान लिया। जो पाना था, सो पा लिया। मैं साक्षी हूँ... मैं ब्रह्म हूँ... मैं चैतन्य आत्मा हूँ... गुरुजी का ज्ञान मेरा ज्ञान हो गया... गुरुजी का अनुभव मेरा अनुभव हो गया...' कभी ऐसा अनुभव भी होगा लेकिन जिस वक्त अभ्यास करता रहेगा उस वक्त ऐसा अनुभव रहेगा फिर लुढ़क गया तो कुछ नहीं रहेगा।

अगर वह चलता रहा, नियम करता रहा, जपानुष्ठान आदि करता रहा तो मंत्रजप करते-करते उसके अर्थ में तल्लीन होता जायेगा। फिर लंबे मंत्र उससे नहीं होंगे। उसे छोटे मंत्र चाहिए। जब वेदान्त-चिंतन करेगा तब ब्रह्माकार वृत्ति बनेगी, आनंद-शांति मिलने लगेगी लेकिन जब चिंतन छूटेगा तो फिर व्यवहार में आ जायेगा।

वासनाओं को मिटाने की, जन्म-मरण से छूटने की जो आकांक्षा है, वह शुभेच्छा है। इस भूमिकावाला जिज्ञासु अहंकार पोसने के लिये कर्म नहीं करता। वह व्यवहार में कुशल एवं मितभाषी होता है।

इस अवस्था में उसका एक पैर संसार में और दूसरा पैर 'बार्डर' पर... परम पद की सीमा के करीब होगा। वह जब तक साधन-भजन करेगा, तब तक उसका मन ऊँची अवस्था में रहेगा लेकिन ज्यों ही साधन-भजन छोड़ देगा त्यों ही उसका मन नीचे आ जायेगा। इस भूमिका में संसार को सँभालने के विचार भी आयेंगे और आत्मज्ञान पाने के विचार भी आयेंगे।

तीसरी भूमिका में आया हुआ व्यक्ति आत्म-साक्षात्कार के नितांत करीब होता है। इस भूमिका में यात्रा करते-करते यदि साधक का देहावसान हो जाता है तो जो लाखों रुपये खर्च करके अश्वमेध यज्ञ करते हैं, उनसे भी ऊँची गति उसकी होती है। तपस्वियों-मुनियों को जहाँ स्थान मिलता है ऐसे ब्रह्मलोक तक की उसकी यात्रा हो जाती है। उसके पुण्य अन्यों की नाईं क्षीण नहीं होते हैं। (क्रमशः)
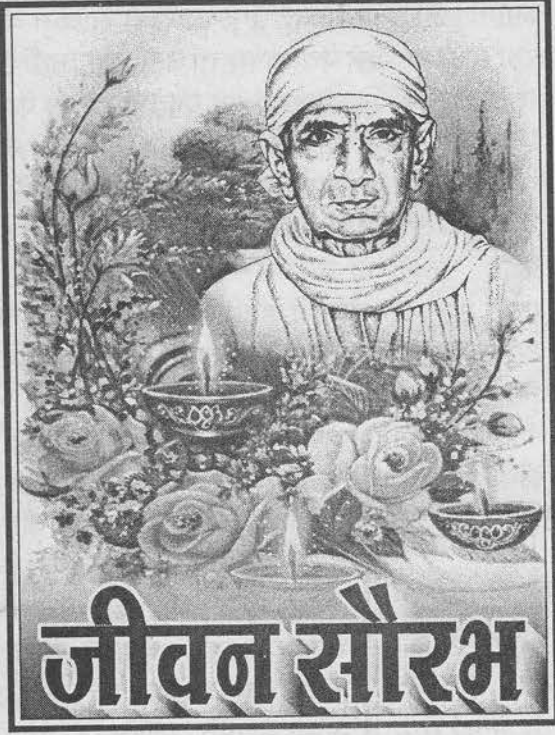
योगसिद्ध ब्रह्मलीन ब्रह्मनिष्ठ
प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद स्वामी श्री

लीलाशाहजी महाराज : एक दिव्य विभूति

[गतांक का शेष]

सावधान नर सदा सुखी

१५ जून १९५७, नैनीताल।

एक साधक ने प्रश्न किया :

''महाराजजी ! साधनाकाल के दौरान साधक को कौन-कौन-सी सावधानी रखनी चाहिये ?''

पूज्य बापू ने एक छोटा-सा उदाहरण देते हुए कहा : ''एक बार सागर में नाव चलानेवाले खलासी लोग अपने मुखिया के पास गये और अपनी बड़ाई हाँकने लगे : 'देखो मुखियाजी ! हम लोग कितने साहसी और होशियार हैं कि नाव को भँवरों तक भी वीरतापूर्वक ले जाते हैं और उनको पार करके सुरक्षित वापस आ जाते हैं। परन्तु यह जो भीमा है न, यह बहुत डरपोक है। यह तो इस प्रकार नाव लेकर भँवरों की ओर जाता ही नहीं है। कितना बुद्धू है ?'

अनुभवी मुखिया ने जवाब दिया :

'तुम लोग भले ही भँवरों को पार करके आ जाते हो, परन्तु तुम्हारी अपेक्षा तो यह भीमा ज्यादा होशियार है। यह ऐसी किसी भयजनक जगह पर जाता ही नहीं है कि जहाँ जिन्दगी जोखिम में पड़ जाय। तुम लोग वहाँ जाते हो तो कभी ऐसे फँस जाओगे कि वापस आ ही नहीं सकोगे, नाव सहित सागर की गहराई में खो जाओगे। भीमा तो ऐसे किसी खतरे में पड़ता ही नहीं है।'

इस प्रकार सन्मार्ग के पथिकों को भी विषय-विकारों से दूर रहना चाहिए। जो विषय-विकारों से दूर रहते हैं वे लोग भाग्यवान् हैं और गृहस्थ आश्रम में रहकर भी जो उनसे दूर रहते हैं वे लोग ज्यादा प्रशंसनीय हैं। विषय-भोगों को भोगते-भोगते लोग उन्हें मक्खन एवं पेड़े समझने लगते हैं, परन्तु सच कहूँ तो वे लोग चूना ही खाते हैं। चूना खाने से क्या दशा होती है यह तो सभी को पता ही होगा। मनुष्य बेचारा होकर मर जाता है। जिस प्रकार साँप को हाथ लगाने से साँप काट लेता है और उसका जहर चढ़ जाता है, उसी प्रकार विषय-भोग जहर के समान हैं। उन्हें थोड़ा भी भोगोगे तो पीछे से बहुत दुःख सहन करना पड़ेगा।

कोई मनुष्य जुआ नहीं खेलता, परन्तु रोज-रोज जुआरियों का संग करके उन लोगों को जुआ खेलते देखकर खुद भी जुआ खेलना सीख जाता है। फिर उसे जुआ का ऐसा चस्का लग जाता है कि वह उसके बिना नहीं रह सकता। यही स्थिति विषय-विकारों के साथ भी है इसलिए विषय-विकारों से दूर रहो।

इसके सिवाय, साधकों को निन्दा-स्तुति, राग-द्वेष आदि के भँवर में भी नहीं जाना चाहिए। उसमें गिरकर पुनः चेत जाओ तो ठीक है, परन्तु कई बार तो ऐसे भँवर में फँसकर ही जीवन पूरा हो जाता है। (क्रमशः)

धर्मान्तरण के षड्यंत्र से सावधान !

महात्मा गाँधीजी ने कहा था : **''भारत में ईसाई धर्मान्तरण के पीछे आध्यात्मिक प्रेरणा व बौद्धिक विश्वास न होकर विशुद्ध भौतिक प्रलोभन व झूठा प्रचार है।''**

राष्ट्रपिता गाँधीजी ने 'अंतरर्राष्ट्रीय मिशनरी सोसायटी' के मंत्री फादर मोर को चुनौती दी कि : **''यदि आपको धर्मान्तरण कराना ही है तो पहले आप मुझ पर या महादेव देसाई पर प्रयोग कीजिये । हमें समझाइये कि ईसाईयत ही श्रेष्ठ क्यों है ? परंतु आप यह करने के बजाय निर्धन और अशिक्षित हरिजन एवं वनवासियों को ही बहकाते हैं ।''**

गाँधीजी कहा करते थे कि : **''ये ईसाई मिशनरी उस साबुन बेचनेवाले के समान हैं जो अपने माल को बेचने के लिए दूसरे के माल की बुराई करता फिरता है ।''**

मिशनरियों के ओछे हथकंडों से गाँधीजी जैसे उदार व्यक्ति को भी इतना क्षोभ हुआ कि एक बार उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा था : **''यदि मेरे हाथ में भारत की राजसत्ता आ जाय तो मैं पहला आदेश विदेशी मिशनरियों को भारत छोड़ने के लिए दूँगा ।''**

भारत में धर्मान्तरण की कोई आवश्यकता नहीं है फिर भी पश्चिम के विभिन्न देशों की ईसाई मिशनरियाँ अपने राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अब युद्ध स्तर पर इस घृणित कार्य को व्यापक रूप देने में जुट पड़ी हैं ।

अभी हाल ही में प्राप्त समाचार के अनुसार नीदरलैन्ड की सरकार ने ईसाई मिशनरियों को गुजरात के शैक्षणिक, सामाजिक व आर्थिक रूप से पिछड़े हुए आदिवासी-बाहुल्य क्षेत्रों जैसे पंचमहाल, डांग, बनासकांठा, साबरकांठा आदि में धर्मान्तरण के लिए पचास करोड़ रूपये की भारी राशि प्रदान की है । क्यों ? जरा सोचें । क्या गरीब आदिवासियों के हित के लिए ? नहीं, बल्कि अपने नापाक राजनीतिक इरादों को अन्जाम देने के लिए।

उनका उद्देश्य है अपना जनबल बढ़ाकर लोकतांत्रिक ढाँचे के तहत ही देश पर राजनीतिक आधिपत्य स्थापित करना और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए गरीब भोले-भाले निरक्षर भारतीयों का धर्मान्तरण कर समाज व देश में अव्यवस्था उत्पन्न करना जिससे सरकार एवं समाज के अगुओं को मिशनरियों के खिलाफ कोई रणनीति बनाने का अवसर ही न मिल पाए ।

इसका उदाहरण हम पूर्वोत्तर प्रान्तों सहित भारत के कुछ अन्य प्रान्तों में समय-समय पर होनेबाले अलगाववादी आन्दोलनों में देख सकते हैं । उनका उद्देश्य है कि भारत में छोटे-छोटे राज्य बनें जिससे उन्हें सत्ता पर हावी होने में सरलता हो। इसीलिए वे उन राज्यों में जहाँ धर्मान्तरित हिन्दुओं की संख्या काफी है वहाँ अलग राज्य की माँग को समर्थन देते हैं ।

केरल राज्य की ही तरह वे भारत में ईसाई प्रभावित कई राज्य बनाना चाहते हैं । चूँकि हमारे देश में पश्चिम के विभिन्न देशों की मिशनरियाँ सक्रिय हैं अतः वे अपनी-अपनी राज्य सरकारें बनाना चाहती हैं अर्थात् भारत को तरबूज की तरह खंड-खंड कर बाँट लेने की तैयारी में हैं जैसा कि

१९वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में पश्चिमी देशों ने चीन में किया था।

उदाहरणार्थ : अभी हाल ही में कांगड़ा संघ शिक्षा वर्ग में अखिल भारतीय सह सेवा प्रमुख श्री श्यामजी गुप्त ने मिशनरियों के बारे में जानकारी देते हुए अपने भाषण में कहा :

''ईसाईयों की एक गुप्त पुस्तक 'ऑपरेशन वर्ल्ड' (जिसे सभी चर्चों में रखा जाता है) में हिमाचल के सन्दर्भ में लिखा है कि, **६ जून को सभी चर्चों में प्रार्थना करनी चाहिए कि यीशु हिमाचल व हरियाणा जीतकर हमें दें।** उसमें यह भी लिखा गया है कि **यहाँ हिन्दुत्व बड़ा मजबूत है, अतः इसे तोड़ने की बहुत जरूरत है।''**

गुप्तजी इस पूरी पुस्तक की 'फोटोकॉपी' (नकल) दिखाने के लिए अपने साथ लाए थे। वे अपने साथ ईसाई जगत की अन्य बहुचर्चित पुस्तकें जैसे **'मिशन मैंडेट', 'अवर गोल एण्ड हाउ टु अचीव इट'** आदि भी लाए हुए थे।

राष्ट्रभाषा हिन्दी को दक्षिण में प्रवेश करने से रोकने में वे कोई कोर-कसर बाकी नहीं रखते। केरल में हिन्दी भाषा का क्या हाल है ? इसे हम आप देख ही रहे हैं कि वहाँ के स्कूलों-कालेजों में हिन्दी की कितनी उपेक्षा हो रही है। क्यों ? क्योंकि भारत में भाषायी एकता कायम न हो सके, उत्तर-दक्षिण के बीच सांस्कृतिक एकता में विघ्न पड़े।

बाहर का उनका धनबल तो है ही, साथ में भारतीय संविधान में प्रदत्त धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार भी उन्हें धर्मान्तरण के लिए देश में खुला मैदान प्रदान करता है। जरूरत पड़ने पर वे अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग को भी बीच में खड़ाकर सुरक्षित हो सकते हैं यह विश्वास भी उन्हें बड़ा संबल देता है।

दुर्भाग्य की बात है कि राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय प्रचारतंत्र (मीडिया) भी सटीक न्याय नहीं कर पाती। उल्लेखनीय है कि देश के बुद्धिजीवियों को भी 'धर्मनिरपेक्षता' के नाम पर वे चुप करने में सफल हो जाते हैं और जो चुप नहीं होते उन्हें 'साम्प्रदायिक' अथवा 'नकारात्मक दृष्टिकोणवाला' कहकर नीचा दिखाते हैं और चुप कर देते हैं। इस प्रकार मिशनरियों ने भारत में अपने लिए परत-दर-परत सुरक्षा-कवच बना रखे हैं।

पहले तो तलवार के बल पर हिन्दुओं का धर्मान्तरण कराया गया जिसकी शुरूआत कट्टरपंथी ईसाईयों ने ही की थी। बाद में मुस्लिम आक्रान्ताओं ने तो उनका अनुकरण भर किया था जो अब इस घृणित कार्य से कटने लगे हैं।

एक तरफ मिशनरियों द्वारा गरीब भोले-भाले आदिवासियों का ईसाईकरण धन और धूर्तई के बल पर किया जा रहा है तो दूसरी तरफ उनके द्वारा संचालित कान्वेन्ट स्कूलों में निर्दोषहृदय बच्चे-बच्चियों को दिग्भ्रमित व दिग्मूढ़ कर उन्हें अपने ही सनातन धर्म से विमुख किया जा रहा है और उनकी सहज भारतीय जीवन-शैली को पश्चिम की फैशनपरस्त एवं भोगवादी संस्कृति में ढाला जा रहा है।

वे हमारे भारत के भविष्य छात्र-छात्राओं एवं भोले-भाले आदिवासी भाई-बहनों को पथभ्रष्ट करने में दिन-रात लगे हैं और हम इतने बेखबर हैं कि उनकी ओर देखते तक नहीं कि उनके साथ, देश और समाज के साथ मिशनरियाँ क्या-क्या खेल खेल रही हैं।

यदि हम कुछ और वर्षों तक ऐसे ही हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहे तो वह दिन दूर नहीं जब हम अपने ही देश में अपने धर्म व संस्कृति के अनुसार जीवन जी नहीं सकेंगे। हमारी उदासीनता का परिणाम बड़ा ही घातक हो सकता है। अतः हमें भी मिल-जुलकर उनके नापाक इरादों को, धर्मान्तरण जैसी घृणित गतिविधियों को सम्पूर्ण रूप से समाप्त करने के लिए हर संभव प्रयास करना चाहिए। *[संपादक]*

संतकृपा से चित्रकेतु का मोह भंग

❊ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❊

सद्‌गुरु मेरा शूरमा, करे शब्द की चोट ।
मारे गोला प्रेम का, हरे भरम की कोट ॥

'मैं शरीर हूँ... यह मेरा नाम है... यह मेरी नात-जात है... यह मेरी पत्नी है... यह मेरा पुत्र-परिवार है... यह मेरा कर्त्तव्य है...' ये सब भरम हमारे अंदर घुस गये हैं। 'हम जी रहे हैं...' यह भी भरम है और 'हम मर जाएँगे...' यह भी भरम है। 'हम माई हैं... हम भाई हैं... हम सुखी हैं... हम दुःखी हैं... हम धनवान् हैं... हम निर्धन हैं... हम पापी हैं... हम पुण्यात्मा हैं... हम अच्छे हैं... हम बुरे हैं...' इस प्रकार न जाने कितने-कितने भरमों में हम उलझे रहते हैं और वास्तव में हम क्या हैं इसका हमें पता ही नहीं है।

जिनको वेदों, शास्त्रों और परमात्मा का ज्ञान नहीं है- ऐसे लोगों से जो हम सुनते हैं, वही अपनेको मान लेते हैं। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं :

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।

'इस देह में यह जीवात्मा मेरा ही सनातन अंश है।'

आप सनातन हो, जन्मने-मरनेवाले नहीं हो। व्यवहार में जो दिखता है कि 'यह माई है... यह भाई है...' यह सब कल्पित है और कल्पनाएँ बदलती रहती हैं जबकि आप तो अबदल, एकरस आत्मा हो।

न मे मृत्युशंका न मे जातिभेदः ।
पिता नैव मे नैव माता न जन्मः ।
न बन्धुर्न मित्रं गुरुर्नैव शिष्यः ।
चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥

जहाँ न कोई पिता है, न माता है, न बन्धु है, न मित्र है- ऐसी अवस्था में आप पहुँच जाओ तो अपने चिदानंदस्वरूप का ज्ञान हो जाए। वही आपका वास्तविक स्वरूप है। अगर आप अपने उस शिवस्वरूप में तीन मिनट के लिए भी विश्रांति पा लो तो फिर देवता लोग भी आपका दीदार करके अपना भाग्य बना लेंगे। आप वह चिद्‌घन चैतन्य आत्मा हो।

कहाँ तो आकाश से भी सूक्ष्म और व्यापक आपका चैतन्यस्वरूप और कहाँ अपने को शरीर मानकर उसके सुख-दुःख, मान-अपमान, हानि-लाभ आदि में उलझी रहनेवाली आपकी स्थूल बुद्धि। कई जन्मों से अपने को माई-भाई, अच्छा-बुरा, पापी-धर्मात्मा, सुखी-दुःखी आदि मानकर स्वयं को ही सताते आये हो। 'यह चाहिए...वह चाहिए... यह समस्या है अतः इसको रिझाऊँ... इसको ठीक करूँ... डॉक्टर बन जाऊँ... इंजीनियर बन जाऊँ...' लेकिन ये सब हो भी गये तो आखिर क्या ? अंत में जब मौत आएगी तब ये सब एक झटके में ही छूट जायेंगे।

'मैं गरीब हूँ... धनवान् हो जाऊँ...' चलो, बन गये करोड़पति। अरे ! हो गये भूपति, तो क्या हो गया काम पूरा ? 'अब हम करोड़पति हैं... पाँच-पचीस आदमी हमारी इज्जत करते हैं...' यदि ऐसा करके सुखी होना चाहते हो

संत-दर्शन के पुण्य के कारण उनका विवेक जाग उठा। उन्होंने देवर्षि नारद के द्वारा बतायी गयी विधि से सात दिन तक केवल जल पीकर बड़ी एकाग्रता से अनुष्ठान किया। कुछ ही दिनों में उनको भगवद्दर्शन भी हो गये।

तो यह अहंकार का सुख है । इज्जत देनेवाले भी मरनेवाले हैं और जिस शरीर को इज्जत मिल रही है वह भी मरनेवाला है। इससे आपको क्या मिला ? आपकी तो भ्रांति दृढ़ हुई कि 'ये मेरी इज्जत करते हैं।' शरीर तो जड़ है। शरीर को तो पता ही नहीं है कि क्या इज्जत और क्या बेइज्जती ? आप इज्जत-बेइज्जती से परे हो किन्तु भ्रान्ति से मान लेते हो कि 'मेरी इज्जत हुई या मेरी बेइज्जती हुई।' जब तक अपने शुद्ध स्वरूप को नहीं जान पाते, तब तक 'मैं-मेरे' की भ्रान्ति नहीं मिटती।

स्वर्गादि परोक्ष हैं परन्तु अपना जो आत्मस्वरूप है वह अपरोक्ष है। उसे जानने के लिये आँख, कान आदि इन्द्रियों की जरूरत नहीं पड़ती है। वह स्वयंप्रकाश, स्वसंवेद्य है।

'श्रीमद्भागवत' के छठवें स्कन्ध के १४ वें अध्याय में एक प्रसंग आता है :

शूरसेन देश के चक्रवर्ती सम्राट चित्रकेतु अनेक सुख-सुविधाओं, साधन-संपत्तियों, दास-दासियों से संपन्न थे एवं उनकी बहुत-सी सुंदर रानियाँ थीं । पृथ्वी का सारा सुख-वैभव उनके अधिकार में था। इतना सब होने पर भी वे भीतर से सुखी एवं शांत न थे।

सुविधा होना अलग बात है, सुख होना अलग बात है । धन होना अलग बात है और तृप्ति होना अलग बात है। किसीके पास धन हो सकता है, सुविधाएँ हो सकती हैं लेकिन वह भीतर से सुखी भी हो, यह जरूरी नहीं है।

उनमें बड़ी रानी के प्रति बहुत द्वेष उत्पन्न हो गया। द्वेष के कारण उनकी बुद्धि मारी गयी और उनके चित्त में क्रूरता छा गयी। द्वेषवश नन्हें-से राजकुमार को विष दे दिया।

चित्रकेतु के पास भी बहुत सारी संपदा और सुविधाएँ थीं, अनेकों रानियाँ थीं फिर भी सदैव चिंतित रहते थे क्योंकि उन्हें कोई पुत्र न था । पुत्र के अभाव में सारी सुविधाएँ उन्हें बेकार लग रही थीं।

एक दिन शाप और वरदान देने में समर्थ अंगिरा ऋषि स्वच्छन्द रूप से विभिन्न लोकों में विचरते हुए राजा चित्रकेतु के महल में पहुँच गये । राजा द्वारा आतिथ्य सत्कार किये जाने के बाद ऋषि अंगिरा ने पूछा :

''राजन् ! तुम्हारे मुँह पर किसी आंतरिक चिन्ता के लक्षण दृष्टिगोचर हो रहे हैं । तुम्हारी उदासी का क्या कारण है ?''

चित्रकेतु ने कहा :

''भगवन् ! मुझे पृथ्वी का साम्राज्य, ऐश्वर्य और संपत्तियाँ, जिनके लिये लोकपाल भी लालायित रहते हैं, प्राप्त हैं। परन्तु संतान न होने के कारण मुझे इन सुख-भोगों से तनिक भी शांति नहीं मिल रही है। अब आप ही कृपा करें। मुझे संतान देकर मेरा दुःख दूर करें।''

चित्रकेतु की प्रार्थना से संतुष्ट होकर सर्वसमर्थ अंगिरा ऋषि ने 'त्वष्टा' देवता के योग्य चरू का निर्माण करके उससे देवता का यजन किया एवं चित्रकेतु से यज्ञ करवाया । यज्ञ का अवशेष प्रसाद चित्रकेतु की सबसे बड़ी रानी कृतद्युति को दिया। महारानी कृतद्युति को गर्भ रह गया। समय पाकर उनके गर्भ से एक सुन्दर पुत्र का जन्म हुआ। पूरे राजमहल में आनंदोत्सव मनाया गया। राजकुमार के जन्म का समाचार पाकर शूरसेन देश की प्रजा भी अत्यंत आनंदित हो उठी।

संसार का ऐसा कोई सुख नहीं, जिसके पीछे दुःख न लगा हुआ हो । संसार का ऐसा कोई लाभ नहीं, जिसके पीछे हानि न लगी हुई हो। संसार का ऐसा कोई संयोग नहीं, जिसके पीछे वियोग न जुड़ा हुआ हो । एकमात्र भगवान ही ऐसे सुखस्वरूप हैं कि जिनको प्राप्त करके सदा के लिए दुःखों का अंत हो जाता है। बाकी तो प्रत्येक सुख के पीछे दुःख लगा ही रहता है।

यह संसार का अटल नियम है कि जिससे आप अत्यंत प्रीति करोगे, वही आपको आखिर में रुलायेगा । आप यदि चाहो कि 'जैसा प्रेमभरा व्यवहार पत्नी आज करती है, वैसा ही सदा करती रहे...' तो यह असंभव है । ऐसे ही पत्नी यदि पति से चाहे तो यह भी असंभव है । कोई व्यक्ति, कोई वस्तु, कोई परिस्थिति, कोई भाव और गुण सदा एक जैसे नहीं रह सकते- यह संसार का नियम है ।

परिवर्तन प्रकृति का अटल नियम है । सागर से लहरें उठती हैं और समाप्त हो जाती हैं । यदि आप लहरों को सदा बनाये रखना चाहो या सदा उनका एक-सा प्रवाह चाहो तो यह असंभव है । हवा का रुख यदि पूर्व की ओर होगा तो लहरें पूर्व की ओर चलेंगी और यदि पश्चिम की ओर होगा तो पश्चिम की ओर दौड़ती दिखेंगी । जिस ओर भी हवा का रुख होगा, उसी ओर लहरें दौड़ेंगी । ऐसे ही व्यक्ति का जैसा स्वभाव और उसके गुण रहेंगे, वैसा ही उसका धर्म रहेगा ।

संसार का ऐसा कोई सुख नहीं जिसके पीछे दुःख न लगा हुआ हो, कोई लाभ नहीं जिसके पीछे हानि न लगी हुई हो, कोई संयोग नहीं जिसके पीछे वियोग न जुड़ा हुआ हो । एकमात्र भगवान ही ऐसे सुखस्वरूप हैं कि जिनको प्राप्त करके सदा के लिए दुःखों का अंत हो जाता है ।

न कोई किसीको सुख देता है, न कोई किसीको दुःख देता है । मनुष्य अपनी ही कल्पना से सुखी-दुःखी होता रहता है ।

काहु न कोउ सुख दुःख कर दाता ।
निज कृत करम भोग सबु भ्राता ॥

मनुष्य अपने कर्मों का फल ही सुख-दुःख के रूप में भोगता है । अतः उसे चाहिए कि वह कर्म करने में सावधान और भोगने में प्रसन्न रहे । कर्मों के फलस्वरूप सुख-दुःख तो मिलेगा ही, लेकिन उसमें सुखी-दुःखी होना-न-होना यह हमारे हाथ की बात है ।

सुख-दुःख की चोटें जीवन में,
आती हैं, आकर जाती हैं ।
ज्ञानी के हृदय में क्षोभ नहीं,
मूरख को नाच नचाती हैं ॥

सुख भी आया, दुःख भी आया । लाभ भी आया, हानि भी आयी । जीवन आया तो मरण भी आया । ज्ञानी वही है, बुद्धिमान् वही है, गुरुभक्त वही है, जो सुख-दुःख, लाभ-हानि, मान-अपमान, निंदा-प्रशंसा आदि सब प्रसंगों में समभाव रहता है क्योंकि संसार में तो ये आते और जाते ही रहेंगे ।

जहाँ बजती है शहनाई, वहाँ मातम भी होते हैं...

ऐसा ही हुआ चित्रकेतु के राजमहल में । जिस रानी से पुत्र उत्पन्न हुआ, उस रानी के प्रति राजा का मोह बढ़ गया । बड़ी उम्र में बेटा हुआ तो बेटे में भी आसक्ति बढ़ गयी ।

अन्य रानियों को महसूस हुआ कि : 'राजा अब बड़ी रानी से ज्यादा प्रेम करने लगे हैं और हमारे प्रति राजा का प्रेम कम हो गया है ।' अतः उनमें बड़ी रानी के प्रति बहुत द्वेष उत्पन्न हो गया । द्वेष के कारण उनकी बुद्धि मारी गयी और उनके चित्त में क्रूरता छा गयी । अतः उन्होंने द्वेषवश नन्हें-से राजकुमार को विष दे दिया ।

सगे-संबंधी स्वार्थ के हैं ।
स्वार्थ का संसार है ॥

तुच्छ स्वार्थ के लिए रानियों ने राजा की परवाह न की, बड़ी रानी की चिंता न की, यहाँ तक कि उस नन्हें निर्दोष राजकुमार की भी परवाह न की और उसे जहर देकर मार डाला ।

राजकुमार को मरा हुआ देखकर पूरा राजमहल शोक में डूब गया । राजा चित्रकेतु मूर्च्छित हो गये । लोग प्रयत्न करके राजा को ज्यों-ही होश में लाते, त्यों ही वे 'हाय... मेरा इकलौता बेटा !' कहकर फिर से बेहोश हो जाते ।

महर्षि अंगिरा और देवर्षि नारद ने देखा कि राजा चित्रकेतु पुत्रशोक के कारण चेतनाहीन हो रहे हैं । तब वे दोनों वहाँ आये एवं चित्रकेतु को समझाने लगे :

''राजन् ! जिसके लिये तुम इतना शोक कर रहे हो, वह बालक इस जन्म और पहले के जन्मों में तुम्हारा कौन था ? तुम उसके कौन थे ? फिर अगले जन्मों में भी उसके साथ तुम्हारे क्या संबंध रहेंगे ? **इस पर जरा विचार करो ।**

कर्मों के फलस्वरूप सुख-दुःख तो मिलेगा ही, लेकिन उसमें सुखी-दुःखी होना-न-होना यह हमारे हाथ की बात है ।

राजन् ! हम, तुम और हम लोगों के साथ इस नश्वर जगत में जितने भी प्राणी विद्यमान हैं, वे सब अपने जन्म के पहले नहीं थे और मृत्यु के पश्चात् नहीं रहेंगे । इससे सिद्ध है कि इस समय भी उनका वास्तविक अस्तित्व नहीं है क्योंकि सत्य वस्तु तो सब समय एक-सी रहती है ।

वयं च त्वं च ये चेमे तुल्यकालाश्चराचराः ।
जन्ममृत्योर्यथा पश्चात् प्राङ्नैवमधुनापि भोः ॥
(श्रीमद्‌भागवत : ६.१५.५)

इस प्रकार महर्षि अंगिरा एवं देवर्षि नारद ने अनेक युक्तियों से राजा को समझाया एवं कहा :

''राजन् ! तुम मोह के वशीभूत न होओ क्योंकि मोह ही सर्व व्याधियों का मूल है । तुम स्वयं अनुभव कर ही रहे हो कि पुत्रवानों को कितना दुःख होता है । अतः अब तुम अपने मन को विषयों में भटकने से रोककर शांत करो, स्वस्थ करो और उस मन के द्वारा अपने वास्तविक स्वरूप का विचार करके परम शांतिस्वरूप परमात्मा में स्थिर हो जाओ ।''

उसके बाद देवर्षि ने मृत राजकुमार के जीवात्मा को शोकाकुल स्वजनों के समक्ष प्रत्यक्ष बुलाकर कहा :

''जीवात्मन् ! तुम्हारा कल्याण हो । तुम्हारे माता-पिता एवं स्वजन तुम्हारे वियोग से अत्यंत दुःखी हो रहे हैं, अतः तुम अपने मृत शरीर में वापस आ जाओ और शेष आयु अपने स्वजनों के साथ ही रहकर व्यतीत करो । अपने पिता के दिये हुए भोगों को भोगो और राजसिंहासन पर बैठो ।''

जीवात्मा ने कहा : ''देवर्षि ! मैं अपने कर्मों के अनुसार देवता, मनुष्य, पशु-पक्षी आदि योनियों में न जाने कितने जन्मों से भटक रहा हूँ । कौन किसका बेटा और कौन किसका पिता ? जब तक जिसका जिस वस्तु से संबंध रहता है, तभी तक उसको उस वस्तु से ममता रहती है । जीव नित्य और अहंकाररहित है । वह गर्भ में आकर जब तक जिस शरीर में रहता है, तभी तक उस शरीर को अपना समझता है । उसका न तो कोई अत्यंत प्रिय है न अप्रिय, न कोई अपना है न पराया ।''

यह कहकर जीवात्मा पुनः चला गया ।

जीवात्मा की ये बातें सुनकर सभी स्वजन विस्मित हो उठे एवं उनका रहा-सहा मोह भी जाता रहा । राजा चित्रकेतु की बुद्धि में वैराग्य जाग उठा । उन्होंने सोचा कि 'मेरा बेटा... मेरा बेटा...' करके मैं अकारण ही मोह कर रहा था । 'मेरा महल... मेरी रानियाँ... मेरा राज्य...' तो कहता हूँ लेकिन ये सब कब तक मेरे रहेंगे ? जिस चैतन्य परमात्मा की सत्ता से 'मेरा-मेरा' कह रहा हूँ, वह परमात्मा ही वास्तव में मेरा है, वही सदा मेरे साथ रहता है । बाकी के ये सब तो दो दिन के रैन-बसेरे हैं ।

अंगिरा ऋषि और नारदजी के उपदेश से राजा का मोह भंग हो गया । देवर्षि नारद ने राजा चित्रकेतु को सात दिन के अनुष्ठान की विधि बतायी । चित्रकेतु के सत्कर्मों के फलस्वरूप एवं संत-दर्शन के पुण्य के कारण उनका विवेक जाग उठा । उन्होंने देवर्षि नारद के द्वारा बतायी गयी विधि से **सात दिन तक केवल जल पीकर बड़ी एकाग्रता से अनुष्ठान किया ।** उस अनुष्ठान के फलस्वरूप उन्हें विद्याधरों का अखंड आधिपत्य प्राप्त हो गया एवं कुछ ही दिनों में भगवद्दर्शन भी हो गये । अनेक

स्तुतियों से राजा ने भगवान की प्रार्थना की। भगवान प्रसन्न हो गये। उन्होंने चित्रकेतु को आशीर्वाद तो दिया ही, साथ ही एक दिव्य विमान भी दिया जो सर्वत्र गति कर सकता था।

विचरण करते-करते राजा एक बार शिवलोक में गये। वहाँ भगवान शिव, पार्वतीजी को गोद में बिठाकर ऋषियों को तत्त्वज्ञान का उपदेश दे रहे थे कि : ''वास्तविक तत्त्व आत्मा है, ब्रह्म है। हम सब उसीमें रमण करते हैं। प्राणिमात्र का स्वरूप वही है लेकिन जो उसे नहीं जानते हैं वे इन्द्रियों में, मन में, मिथ्या संसार में रमण करते हैं। हालाँकि रमण करने की सत्ता भी तो उसी चैतन्यस्वरूप की है और वही शुद्ध ब्रह्म है। उसीको साक्षी, द्रष्टा, चिद्घन चैतन्य आदि जो कहते हैं वह केवल समझाने के लिये कहते हैं, बाकी तो वह अपना-आपा है। अपना जो नित्य अनुभव है, जो अपरोक्ष अनुभव है, बस वही वह सत्ता है। यह 'मैं-मेरा... तू-तेरा...' आदि प्रत्यक्ष है, स्वर्गादि परोक्ष हैं परन्तु अपना जो आत्मस्वरूप है वह अपरोक्ष है। उसे जानने के लिये आँख, कान आदि इन्द्रियों की जरूरत नहीं पड़ती है। वह स्वयंप्रकाश, स्वसंवेद्य है। ऐसा जो जानता है वही मुझ शिव को ठीक से जानता है।''

> *अगर आप अपने शिवस्वरूप में तीन मिनट के लिए भी विश्रांति पा लो तो फिर देवता लोग भी आपका दीदार करके अपना भाग्य बना लेंगे। आप वह चिद्घन चैतन्य आत्मा हो।*

इस प्रकार शिवजी अति गूढ़ ज्ञान का वर्णन कर रहे थे। राजा होने के कारण चित्रकेतु के मन में निर्णय करने की आदत गहरी घुसी थी कि 'यह ठीक है और वह ठीक नहीं है... यह अच्छा है और वह बुरा है... ऐसा होना चाहिए और वैसा नहीं होना चाहिए...' आदत तो सदैव साथ रहती है। राजा यदि बुद्धि को ब्रह्म-परमात्मा में लगाते तो बुद्धि शुद्ध हो जाती, परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया था इसलिए वे सोचने लगे : 'शिवजी होकर भी अपनी स्त्री में इतनी आसक्ति रखते हैं! बातें तो ब्रह्मज्ञान की सुनाते हैं लेकिन स्त्री की आसक्ति नहीं छोड़ पाते हैं। शिवजी को ऐसा रहना ठीक नहीं है' यह सोचकर उन्होंने शिवजी को कुछ भला-बुरा सुना दिया।

भगवान सांबसदाशिव तो गुणातीत, देशातीत, कालातीत, आकाशस्वरूप चैतन्य पद में स्थित थे, परन्तु राजा के द्वारा किया गया शिवजी का यह अपमान माता पार्वती से सहन नहीं हुआ। पार्वतीजी ने उनकी यह धृष्टता देखकर क्रोध से कहा :

''जान पड़ता है कि ब्रह्माजी, भृगु, नारद आदि, उनके पुत्र सनकादि, महर्षि कपिलदेव और मनु आदि बड़े-बड़े महापुरुष धर्म का रहस्य नहीं जानते, तभी वे धर्म-मर्यादा का उल्लंघन करनेवाले भगवान शिव को इस काम से नहीं रोकते।''

माता पार्वती ने सोचा : 'ब्रह्मा आदि समस्त महापुरुष जिनके चरणकमलों का ध्यान करते हैं, उन्हीं मंगलों को मंगल बनानेवाले साक्षात् जगद्गुरु भगवान का और उनके अनुयायी महात्माओं का इस अधम क्षत्रिय ने तिरस्कार किया है और शासन करने की चेष्टा की है। इसलिए यह ढीठ सर्वथा दण्ड का पात्र है। इसे अपने बड़प्पन का घमण्ड है। जिनकी उपासना बड़े-बड़े सत्पुरुष किया करते हैं, भगवान श्रीहरि के उन चरणकमलों में यह मूर्ख रहने योग्य नहीं है।'

उन्होंने चित्रकेतु को संबोधन कर कहा : ''हे दुर्मते! तुम पापमय असुर योनि में जाओ। ऐसा होने से बेटा! तुम फिर कभी किसी महापुरुष का अपमान नहीं कर सकोगे।''

जब पार्वतीजी ने इस प्रकार चित्रकेतु को शाप दिया तब वे विमान से उतर पड़े और सिर झुकाकर उन्हें प्रसन्न करने लगे।

चित्रकेतु ने कहा : ''माता पार्वतीजी! मैं बड़ी प्रसन्नता से दोनों हाथ जोड़कर आपका शाप स्वीकार करता हूँ, क्योंकि देवता लोग मनुष्यों को

जो कुछ कह देते हैं, वह उनके प्रारब्धानुसार मिलनेवाले फल की पूर्व सूचनामात्र होती है।

देवी ! यह जीव अज्ञान से मोहित हो रहा है और इसी कारण इस संसार-चक्र में भटकता रहता है तथा सदा-सर्वदा एवं सर्वत्र सुख-दुःख भोगता रहता है।

माताजी ! सुख और दुःख को देनेवाली न तो अपनी आत्मा है और न कोई अन्य। जो अज्ञानी हैं, वे ही अपनेको अथवा दूसरों को सुख-दुःख का कर्त्ता मानते हैं।

यह जगत सत्त्व-रज-तम आदि गुणों का स्वाभाविक प्रवाह है। इसमें क्या शाप क्या अनुग्रह ? क्या स्वर्ग क्या नरक ? क्या सुख क्या दुःख ? एकमात्र परिपूर्णतम भगवान ही बिना किसीकी सहायता के अपनी आत्मस्वरूपिणी माया के द्वारा समस्त प्राणियों की तथा उनके बन्धन-मोक्ष और सुख-दुःख की रचना करते हैं। माताजी ! भगवान श्रीहरि सबमें सम और माया आदि मल से रहित हैं। उनका कोई प्रिय-अप्रिय, जाति-बन्धु, अपना-पराया नहीं है। जब सुख में उनका राग नहीं है, तब उनमें रागजन्य क्रोध हो ही कैसे सकता है ? तथापि उनकी माया-शक्ति के कार्य पाप और पुण्य ही प्राणियों के सुख-दुःख, हित-अहित, बन्धन-मोक्ष, जन्म-मरण और आवागमन के कारण बनते हैं। मैं शाप से मुक्त होने के लिए आपको प्रसन्न नहीं कर रहा हूँ। मैं तो यह चाहता हूँ कि आपको मेरी जो बात अनुचित प्रतीत हुई हो, उसके लिए क्षमा करें।''

तब भगवान शंकर ने देवता, ऋषि, दैत्य, सिद्ध और पार्षदों के सामने ही भगवती पार्वतीजी से यह बात कही।

भगवान शंकर ने कहा :

''सुन्दरी ! दिव्यलीलाविहारी भगवान के निःस्पृह और उदारहृदय दासानुदासों की महिमा तुमने अपनी आँखों देख ली।

जो लोग भगवान के शरणागत होते हैं, वे किसीसे भी नहीं डरते क्योंकि उन्हें स्वर्ग, मोक्ष और नरकों में भी एक ही वस्तु के- केवल भगवान के ही दर्शन होते हैं।

जीवों को भगवान की लीला से ही देह का संयोग होने के कारण सुख-दुःख, जन्म-मरण और शाप-अनुग्रह आदि द्वन्द्व प्राप्त होते हैं। जैसे स्वप्न में भेद-भ्रम, सुख-दुःख आदि की प्रतीति होती है और जाग्रत अवस्था में भ्रमवश रस्सी में ही सर्पबुद्धि होती है, वैसे ही मनुष्य अज्ञानवश आत्मा में देवता, मनुष्य आदि भेद तथा गुण-दोष आदि की कल्पना कर लेता है।

जिनके पास ज्ञान और वैराग्य बल है और जो भगवान वासुदेव के चरणों में भक्तिभाव रखते हैं उनके लिए इस जगत में ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिसे वे हेय या उपादेय समझकर राग-द्वेष करें।

भगवान को न कोई प्रिय है और न अप्रिय। उनका न कोई अपना है न पराया। वे सभी प्राणियों की आत्मा हैं, इसलिए सभी प्राणियों के प्रियतम हैं। प्रिये ! यह परम भाग्यवान् चित्रकेतु उन्हीं का प्रिय अनुचर, शान्त एवं समदर्शी है और मैं भी भगवान श्रीहरि का ही प्रिय हूँ।

इसलिए तुम्हें भगवान के प्यारे भक्त, शान्त, समदर्शी, महात्मा पुरुषों के सम्बन्ध में किसी प्रकार का आश्चर्य नहीं करना चाहिए।''

ये ही विद्याधर चित्रकेतु दानव योनि का आश्रय लेकर त्वष्टा के दक्षिणाग्नि से पैदा हुए, वहाँ इनका नाम वृत्रासुर हुआ और वहाँ भी वे भगवद्स्वरूप के ज्ञान एवं भक्ति से परिपूर्ण ही रहे।

शरीर चाहे पशु का मिले या असुर का, चाहे किसी भी योनि में जन्म लेना पड़े लेकिन हमारे मन से भगवद्भक्ति नहीं जानी चाहिए। भगवान की भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ एवं सदा सुखदायी है।

महत्त्वपूर्ण निवेदन : सदस्यों के डाक पते में परिवर्तन अगले अंक के बाद के अंक से कार्यान्वित होगा। जो सदस्य ८८ वें अंक से अपना पता बदलवाना चाहते हैं, वे कृपया फरवरी २००० के अंत तक अपना नया पता भिजवा दें।

शिवजी का अनोखा वेश : देता है दिव्य संदेश

[महाशिवरात्रि दिनांक : ४ मार्च २०००]

※ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ※

यस्यांके च विभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके।
भाले बालविधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट्।
सोऽयं भूतिविभूषणः सुरवरः सर्वाधिपः सर्वदा।
शर्वः सर्वगतः शिवः शशिनिभः श्रीशंकरः पातु माम्॥

'जिनकी गोद में हिमाचलसुता पार्वतीजी, मस्तक पर गंगाजी, ललाट पर द्वितीया का चंद्रमा, कंठ में हलाहल विष और वक्षःस्थल पर सर्पराज शेषजी सुशोभित हैं, वे भस्म से विभूषित, देवताओं में श्रेष्ठ सर्वेश्वर, संहारकर्त्ता (या भक्तों के पापनाशक), सर्वव्यापक, कल्याणस्वरूप, चंद्रमा के समान शुभ्रवर्ण श्रीशंकरजी सदा मेरी रक्षा करें।'

'शिव' अर्थात् कल्याण-स्वरूप। भगवान शिव तो हैं ही प्राणिमात्र के परम हितैषी, परम कल्याणकारक लेकिन उनका बाह्य रूप भी मानवमात्र को एक मार्गदर्शन प्रदान करनेवाला है।

शिवजी का निवास-स्थान है कैलास शिखर। ज्ञान हमेशा धवल शिखर पर रहता है अर्थात् ऊँचे केन्द्रों में रहता है जबकि अज्ञान नीचे के केन्द्रों में रहता है। काम, क्रोध, भय आदि के समय मन-प्राण नीचे के केन्द्र में, मूलाधार केन्द्र में रहते हैं। मन और प्राण अगर ऊपर के केन्द्रों में हों तो वहाँ काम टिक नहीं सकता।

शिवजी को काम ने बाण मारा लेकिन शिवजी की निगाहमात्र से ही काम जलकर भस्म हो गया। आपके चित्त में भी यदि कभी काम आ जाये तो आप भी ऊँचे केन्द्रों में आ जाओ ताकि वहाँ काम की दाल न गल सके।

कैलास शिखर धवल है, हिमशिखर धवल है और वहाँ शिवजी निवास करते हैं। ऐसे ही जहाँ सत्त्वगुण की प्रधानता होती है, वहीं आत्मशिव रहता है।

शिवजी की जटाओं से गंगाजी निकलती हैं अर्थात् ज्ञानी के मस्तिष्क में से ज्ञानगंगा बहती है। उनमें तमाम प्रकार की ऐसी योग्यताएँ होती हैं कि जिनसे जटिल-से-जटिल समस्याओं का समाधान भी अत्यंत सरलता से हँसते-हँसते हो जाता है।

शिवजी के मस्तक पर द्वितीया का चाँद सुशोभित होता है अर्थात् जो ज्ञानी हैं वे दूसरों का नन्हा-सा प्रकाश, छोटा-सा गुण भी शिरोधार्य करते हैं। शिवजी ज्ञान के निधि हैं, भण्डार हैं, इसीलिये तो किसीके भी ज्ञान का अनादर नहीं करते हैं वरन् आदर ही करते हैं।

शिवजी ने गले में मुण्डों की माला धारण की है। कुछ विद्वानों का मत है कि ये मुण्ड किसी साधारण व्यक्ति के मुण्ड नहीं, वरन् ज्ञानवानों के मुण्ड हैं। जिनके मस्तिष्क में जीवनभर ज्ञान के विचार ही रहे हैं, ऐसे ज्ञानवानों की स्मृति ताजी करने के लिये उन्होंने मुण्डमाला

ब्रह्मचिंतन करने से, शिवतत्त्व का चिंतन करने से बुद्धि का प्रकाश बढ़ने लगता है, पितरों का उद्धार होने लगता है, चित्त की चंचलता मिटने लगती है, दिल की दरिद्रता दूर होने लगती है एवं मन में शांति आने लगती है। शिवपूजन का महा फल यही है कि मनुष्य शिवतत्त्व को प्राप्त हो जाये।

धारण की है। कुछ अन्य विद्वानों के मतानुसार शिवजी ने गले में मुण्डों की माला धारण करके हमें बताया है कि गरीब हो चाहे धनवान्, पठित हो चाहे अपठित, माई हो चाहे भाई लेकिन अंत समय में सब खोपड़ी छोड़कर जाते हैं। आप अपनी खोपड़ी में चाहे कुछ भी भरो, आखिर वह यहीं रह जाती है।

भगवान शंकर देह पर भभूत रमाये हुए हैं क्योंकि वे शिव हैं, कल्याणस्वरूप हैं। लोगों को याद दिलाते हैं कि चाहे तुमने कितना ही पद-प्रतिष्ठावाला, गर्व भरा जीवन बिताया हो, अंत में तुम्हारी देह का क्या होनेवाला है, वह मेरी देह पर लगायी हुई भभूत बताती है। अतः इस चिताभस्म को याद करके आप भी मोह-ममता और गर्व को छोड़कर अंतर्मुख हो जाया करो।

फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी अर्थात् महाशिवरात्रि। पृथ्वी पर शिवलिंग के स्थापन का जो दिवस है, भगवान शिव के विवाह का जो दिवस है और प्राकृतिक नियम के अनुसार जीव-शिव के एकत्व में मदद करनेवाले ग्रह-नक्षत्रों के योग का जो दिवस है- वही है महाशिवरात्रि का पावन दिवस।

शिवजी के अन्य आभूषण हैं बड़े विकराल सर्प। अकेला सर्प होता है तो मारा जाता है लेकिन यदि वही सर्प शिवजी के गले में, उनके हाथ पर होता है तो पूजा जाता है। ऐसे ही आप संसार का व्यवहार केवल अकेले करोगे तो मारे जाओगे लेकिन शिवतत्त्व में डुबकी मारकर संसार का व्यवहार करोगे तो आपका व्यवहार भी आदर्श व्यवहार बन जायेगा।

शिवजी के हाथों में त्रिशूल एवं डमरू सुशोभित हैं। इसका तात्पर्य यह है कि वे सत्त्व, रज एवं तम- इन तीन गुणों के आधीन नहीं होते, वरन् उन्हें अपने आधीन रखते हैं और जब प्रसन्न होते हैं तब डमरू लेकर नाचते हैं।

अकेला सर्प मारा जाता है। वही सर्प शिवजी के गले में होता है तो पूजा जाता है। ऐसे ही आप संसार का व्यवहार केवल अकेले करोगे तो मारे जाओगे लेकिन शिवतत्त्व में डुबकी मारकर संसार का व्यवहार करोगे तो आपका व्यवहार भी आदर्श व्यवहार बन जायेगा।

कई लोग कहते हैं कि शिवजी को भाँग का व्यसन है। वास्तव में तो उन्हें भुवन भंग करने का यानी सृष्टि का संहार करने का व्यसन है, भाँग पीने का नहीं। किन्तु भंगेड़ियों ने 'भुवन भंग' में से अकेले 'भंग' शब्द का अर्थ 'भाँग' लगा लिया और भाँग पीने की छूट ले ली।

उत्तम माली वही है जो आवश्यकता के अनुसार बगीचे में काट-छाँट करता रहता है, तभी बगीचा सजा-धजा रहता है। अगर वह बगीचे में काट-छाँट न करे तो बगीचा जंगल में बदल जाये। ऐसे ही भगवान शिव इस संसार के उत्तम माली हैं, जिन्हें भुवनों को भंग करने का व्यसन है।

शिवजी के यहाँ बैल-सिंह, मोर-साँप-चूहा आदि परस्पर विपरीत स्वभाव के प्राणी भी मजे से एक साथ निर्विघ्न रह लेते हैं। क्यों? शिवजी की समता के प्रभाव से। ऐसे ही जिसके जीवन में समता है वह विरोधी वातावरण में, विरोधी विचारों में भी बड़े मजे से जी लेता है।

जैसे, आपने देखा होगा कि गुलाब के फूल को देखकर बुद्धिमान् व्यक्ति प्रसन्न होता है कि : 'काँटों के बीच भी वह कैसे महक रहा है! जबकि फरियादी व्यक्ति बोलता है कि : 'एक फूल और इतने सारे काँटे! क्या यही है संसार, कि जिसमें जरा-सा सुख और कितने सारे दुःख!'

जो बुद्धिमान् है, शिवतत्त्व का जानकार है, जिसके जीवन में समता है, वह सोचता है कि जिस सत्ता से फूल खिला है,

उसी सत्ता ने काँटों को भी जन्म दिया है। जिस सत्ता ने सुख दिया है, उसी सत्ता ने दुःख को भी जन्म दिया है। सुख-दुःख को देखकर जो उसके मूल में पहुँचता है, वह मूलों के मूल महादेव को भी पा लेता है।

इस प्रकार शिवतत्त्व में जो जगे हुए हैं उन महापुरुषों की तो बात ही निराली है लेकिन जो शिवजी के बाह्य रूप को ही निहारते हैं वे भी अपने जीवन में उपरोक्त दृष्टि ले आयें तो उनकी भी असली शिवरात्रि, कल्याणमयी रात्रि हो जाये...

शिवजी का निवास-स्थान है कैलास शिखर। ज्ञान हमेशा धवल शिखर पर, ऊँचे केन्द्रों में रहता है और अज्ञान नीचे के केन्द्रों में। काम, क्रोध, भय आदि के समय मन-प्राण नीचे के केन्द्र में, मूलाधार केन्द्र में रहते हैं। मन-प्राण अगर ऊपर के केन्द्रों में हों तो वहाँ काम टिक नहीं सकता।

* महाशिवरात्रि का पूजन *

फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी अर्थात् महाशिवरात्रि। पृथ्वी पर शिवलिंग के स्थापन का जो दिवस है, भगवान शिव के विवाह का जो दिवस है और प्राकृतिक नियम के अनुसार जीव-शिव के एकत्व में मदद करनेवाले ग्रह-नक्षत्रों के योग का जो दिवस है- वही है महाशिवरात्रि का पावन दिवस। यह रात्रि-जागरण करने की रात्रि, सजाग रहने की रात्रि, ईश्वर की आराधना-उपासना करने की रात्रि है।

शिवजी की आराधना निष्काम भाव से कहीं भी की जा सकती है किन्तु सकाम भाव से आराधना विधि-विधानपूर्वक की जाती है। जिन्हें संसार से सुख-वैभव लेने की इच्छा होती है वे भी शिवजी की आराधना करते हैं और जिन्हें सद्गति प्राप्त करनी होती है, वे भी शिवजी की आराधना करते हैं।

शिवजी के यहाँ परस्पर विपरीत स्वभाव के प्राणी भी निर्विघ्न रह लेते हैं- शिवजी की समता के प्रभाव से। जिसके जीवन में समता है वह विरोधी वातावरण में, विरोधी विचारों में भी बड़े मजे से जी लेता है।

शिवजी की पूजा का विधान यह है कि पहले जहाँ शिवजी की स्थापना की जाती है वहाँ से फिर उनका स्थानांतर नहीं होता, उनकी जगह नहीं बदली जाती। शिवजी की पूजा के निर्माल्य (पत्र-पुष्प, पंचामृतादि) का उल्लंघन नहीं किया जाता। इसीलिए शिवजी के मंदिर की पूरी प्रदक्षिणा नहीं होती क्योंकि पूरी प्रदक्षिणा करने से निर्माल्य उल्लंघित हो जाता है।

शिवलिंग विविध द्रव्यों से बनाये जाते हैं। अलग-अलग द्रव्यों से बने शिवलिंगों के पूजन के फल भी अलग-अलग प्रकार के होते हैं। जैसे, ताँबे के शिवलिंग के पूजन से आरोग्य-प्राप्ति होती है। पीतल के शिवलिंग के पूजन से यश, आरोग्य-प्राप्ति एवं शत्रुनाश होता है। चाँदी के शिवजी बनाकर उनकी पूजा करने से पितरों का कल्याण होता है। सुवर्ण के शिवजी बनाकर उनकी पूजा करने से तीन पीढ़ियों तक घर में धन-धान्य बना रहता है। मणि-माणेक का शिवलिंग बनाकर उसकी पूजा करने से बुद्धि, आयुष्य, धन, ओज-तेज बढ़ता है लेकिन ब्रह्मचिंतन करने से, शिवतत्त्व का चिंतन करने से ये चीजें स्वाभाविक ही प्रगट होने लगती हैं। परमात्मतत्त्व में, शिवतत्त्व में डुबकी मारने से बुद्धि का प्रकाश बढ़ने लगता है, पितरों का उद्धार होने लगता है, चित्त की चंचलता मिटने लगती है, दिल की दरिद्रता दूर होने लगती है एवं मन में शांति आने लगती है। शिवपूजन का महा फल यही है कि मनुष्य शिवतत्त्व को प्राप्त हो जाये।

शिवरात्रि को भक्तिभाव से रात्रि-जागरण

किया जाता है । जल, पंचामृत, फल-फूल एवं बिल्वपत्र से शिवजी का पूजन करते हैं । बिल्वपत्र में तीन पत्ते होते हैं जो सत्त्व, रज एवं तमोगुण के प्रतीक हैं । हम अपने ये तीनों गुण शिवार्पण करके गुणों से पार हो जायें, यही इसका हेतु है । पंचामृत-पूजा क्या है ? पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पंचमहाभूतों का ही सारा भौतिक विलास है । इन पंचमहाभूतों का भौतिक विलास जिस चैतन्य की सत्ता से हो रहा है उस चैतन्यस्वरूप शिव में अपने अहं को अर्पित कर देना, यही पंचामृत-पूजा है । धूप और दीप द्वारा पूजा माने क्या ? धूप का तात्पर्य है अपने 'शिवोऽहम्' की सुवास, 'आनंदोऽहम्' की सुवास और दीप का तात्पर्य है आत्मज्ञान का प्रकाश ।

चाहे जंगल या मरूभूमि में क्यों न हो, रेती या मिट्टी के शिवजी बना लिये, पानी के छींटे मार दिये, जंगली फूल तोड़कर धर दिये और मुँह से ही नाद बजा दिया तो शिवजी प्रसन्न हो जाते हैं एवं भावना शुद्ध होने लगती है ।

देह पर भभूत रमाये हुए भगवान शंकर लोगों को याद दिलाते हैं कि चाहे तुमने कितना ही पद-प्रतिष्ठावाला, गर्व भरा जीवन बिताया हो, अंत में तुम्हारी देह का क्या होनेवाला है, वह मेरी देह पर लगायी हुई भभूत बताती है ।

आशुतोष जो ठहरे ! जंगली फूल भी शुद्ध भाव से तोड़कर शिवलिंग पर चढ़ाओगे तो शिवजी प्रसन्न हो जाते हैं और यही फूल कामदेव ने शिवजी को मारे तो शिवजी नाराज हो गये । क्यों ? क्योंकि फूल फेंकने के पीछे कामदेव का भाव शुद्ध नहीं था, इसीलिए शिवजी ने तीसरा नेत्र खोलकर उसे भस्म कर दिया । शिवपूजा में वस्तु का मूल्य नहीं, भाव का मूल्य है ।

भावो हि विद्यते देवो...

आराधना का एक तरीका यह है कि पत्र, पुष्प, पंचामृत, बिल्वपत्रादि से चार प्रहर पूजा की जाये । दूसरा तरीका यह है कि मानसिक पूजा की जाये ।

कभी-कभी योगी लोग इस रात्रि का सदुपयोग करने का आदेश देते हुए कहते हैं कि : ''आज की रात्रि तुम ऐसी जगह पसंद कर लो कि जहाँ तुम अकेले बैठ सको, अकेले टहल सको, अकेले घूम सको, अकेले जी सको । फिर तुम शिवजी की मानसिक पूजा करो और उसके बाद अपनी वृत्तियों को निहारो, अपने चित्त की दशा को निहारो । चित्त में जो-जो आ रहा है और जो-जो जा रहा है उस आने और जाने को निहारते-निहारते आने-जाने की मध्यावस्था को जान लो ।

दूसरा तरीका यह है कि चित्त का एक संकल्प उठा और दूसरा उठने को है, उस शिवस्वरूप व आत्मस्वरूप मध्यावस्था को तुम मैं रूप में स्वीकार कर लो, उसमें टिक जाओ ।

तीसरा तरीका यह भी है कि किसी नदी या जलाशय के किनारे बैठकर जल की लहरों को एकटक देखते जाओ अथवा तारों को निहारते-निहारते अपनी दृष्टि को उन पर केन्द्रित कर दो । 'दृष्टि बाहर की लहरों पर केन्द्रित है और वह दृष्टि केन्द्रित है कि नहीं, उसकी निगरानी मन करता है और मन निगरानी करता है कि नहीं करता है, उसको निहारनेवाला मैं कौन हूँ ?' गहराई से इसका चिंतन करते-करते आप परम शांति में भी विश्रांति कर सकते हो ।

चौथा तरीका यह है कि जीभ न ऊपर हो न नीचे हो बल्कि तालू के मध्य में हो और जिह्वा पर ही आपकी चित्तवृत्ति स्थिर हो । इससे भी मन शांत हो जायेगा और शांत मन में शांत शिवतत्त्व का साक्षात्कार करने की क्षमता प्रगट होने लगेगी ।''

साधक चाहे तो कोई भी एक तरीका अपनाकर शिवतत्त्व में जगने का यत्न कर सकता है । महाशिवरात्रि का यही उत्तम पूजन है ।

✻

मन एक कल्पवृक्ष

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

मन के साथ यदि मित्रता की जाये, विवेक से उसे उच्च लक्ष्य की ओर मोड़ा जाये तो वह बड़ा लाभ दे सकता है और यदि उसकी अधीनता स्वीकार करके, उसके कहे में आकर बह गये तो वह मन बड़ी हानि भी पहुँचा सकता है। इसीलिए शास्त्रों ने कहा है :

मनः एव मनुष्याणां
कारणं बंधमोक्षयोः।

'मन' ही मनुष्य के बंधन और मुक्ति का कारण है।'

यदि मन अनात्म देह में, अनात्म भोगों में, अनात्म जगत में आकर स्थित होता है तो वह मनुष्य का शत्रु हो जाता है और वही मन अगर आत्मा-परमात्मा की ओर आकर्षित होता है, परमात्म-संबंधी बातों का श्रवण, मनन और निदिध्यासन करता है तो वह मन मित्र का काम करता है और सूक्ष्मता को पाकर परम सूक्ष्म परमात्मतत्त्व का साक्षात्कार भी कर लेता है।

मन जितना-जितना सूक्ष्म होता जायेगा, उतनी-उतनी विश्रांति अच्छी लगेगी और जितनी-जितनी विश्रांति लेंगे, उतना-उतना मन सूक्ष्म होगा।

मनुष्य का मन जितना स्थूल होगा, उसे जगत उतना सच्चा लगेगा, भोगों के प्रति आकर्षण होगा और वह तुच्छ होता जायेगा। जितना-जितना उसे जगत स्वप्न जैसा लगेगा, भोगों से उपरामता होगी और उसका मन सूक्ष्म होता जायेगा एवं विश्रांति लेता जायेगा, उतना-उतना वह व्यक्ति महान् होता जायेगा।

चित्त की विश्रांति क्यों नहीं होती ? ध्यान क्यों नहीं लगता ?

हम बदलनेवाले संसार को, बदलनेवाली परिस्थितियों को हृदय में इतनी जगह दे बैठे हैं कि चित्त की विश्रांति नहीं हो पाती है। अगर अपने स्वरूप को पाने की इच्छा उत्पन्न हो जाये और तत्संबंधी प्रयास करें तो विश्रांति पाना आसान हो जाये। तेरह निमेष तक परब्रह्म परमात्मा में विश्रांति पाने से जगतदान करने का फल प्राप्त होता है। सत्रह निमेष तक उस सच्चिदानंद परमात्मा में डूबने से अश्वमेध यज्ञ करने का फल मिलता है और यदि कोई आधा घण्टा तक उस परमात्मस्वरूप में विश्रांति पा ले तो वह यक्ष, गंधर्व, किन्नरों और देवताओं से भी पूजे जाने योग्य हो जाता है।

यदि कोई प्रारंभिक जिज्ञासु है, ईश्वर की ओर चल रहा है, उसके सामने दो-चार कर्त्तव्य एक साथ आ जाते हैं और वह व्यावहारिक कर्त्तव्यों को मूल्य देता है, स्थूल जगत को सत्य मानकर जीनेवालों की बातों को मूल्य देता है तो बेचारा उलझ जाता है और उसका समय उसीमें नष्ट हो जाता है। अगर

> *भोगी पुरुष की अधिक सेवा करने से बुद्धि मंद हो जाती है, लाभ नहीं, वरन् हानि ज्यादा होती है जबकि उच्च प्रकृति के व्यक्तियों की सेवा करने और उनके सान्निध्य से परम लाभ होता है।*

> *आत्मज्ञान के पथिक को संसारी सुख के प्रसंगों से तो बचना ही चाहिए, संसारी सुख में जो उलझे हुए हैं ऐसे संसारियों से भी बचना चाहिए।*

वह विवेकशील है तो कर्त्तव्य उसे व्यवहार में तो खीचेंगे जैसे, पत्नी के प्रति कर्त्तव्य, पति के प्रति कर्त्तव्य, समाज के प्रति कर्त्तव्य और देह के प्रति कर्त्तव्य... फिर भी वह इन कर्त्तव्यों में उलझेगा नहीं और उसका अपना जो वास्तविक कर्त्तव्य है- अपने आत्मस्वरूप को जानने का, उसीको महत्त्व देगा।

व्यक्ति की जैसी मति और जैसा उसका संग होगा वैसे ही कर्त्तव्यों को वह मूल्य देगा। अगर उसकी मति श्रेष्ठ है, उसका संग ऊँचा है तो वह ऊँचे कर्त्तव्यों को मूल्य देगा। यदि उसकी मति मध्यम है तो वह मध्यम कर्त्तव्यों को मूल्य देगा और यदि उसकी मति हल्की है तथा उसका संग भी हल्का है तो फिर वह निम्न कर्त्तव्यों को मूल्य देगा।

साधक को चाहिए कि वह सजातीय वृत्तियों का आदर करे और विजातीय वृत्तियों का त्याग कर दे। आत्मज्ञान संबंधी शास्त्रों का श्रवण, मनन एवं आत्मवेत्ता महापुरुषों के सान्निध्य में रहने का भाव 'सजातीय वृत्ति' है।

स्वामी रामतीर्थ कहा करते थे : ''कर्ज लेकर, उधार लेकर बेटे-बेटियों की शादी की खुशी मनाना- हाय रे तेरा फ़र्ज !... घूस लेकर, रिश्वत लेकर भी ठाठ-बाट करना- हाय रे तेरा फ़र्ज !... छल-कपट करके भी देह-वस्त्र-घर को सजाना- हाय रे तेरा फ़र्ज !... हे मानव ! क्या तेरा यही फ़र्ज है ? जिंदगी भर चिन्ताओं की गठरियाँ उठाते रहना, अन्तःकरण को मलिन करते रहना- क्या यही तेरा फ़र्ज है ? नहीं, तेरा मुख्य फ़र्ज है आत्मसिंहासन पर आने का, अपने आत्मराज्य में आने का, अपने असंग स्वभाव में आने का। यदि मानव होकर भी तू अपने असंग स्वभाव में नहीं आयेगा और प्रकृति के स्वभाव में बहता रहेगा तो फिर कौन-से शरीर में तू अपना वास्तविक फर्ज निभायेगा ?''

जो बदलती हुई चीजों को 'मेरा' मान लेता है और साधन को 'मैं' मान लेता है तथा वास्तविक साध्य का जिसको पता नहीं है, वह संसारी है।

जब मानव का विवेक सजाग हो उठता है तब उसे ये विचार सहज ही आने लगते हैं कि : 'मैं कब तक सामान्यजनों की नाईं राग-द्वेष, अस्मिता और अभिनिवेश में आकर अपना जीवन बरबाद करता रहूँगा ? एक दिन... दो दिन... सप्ताह... मास... वर्ष... ऐसा करते-करते समय बीतता चला जा रहा है और जो करने जैसा कार्य है- आत्मस्वरूप में विश्रांति पाने का-उसकी मुझे सुधि तक नहीं है ! मैं कब तक ऐसी माया में फँसा रहूँगा ?...' इस प्रकार का जगा हुआ विवेक मनुष्य को सहज ही में परमात्मप्राप्ति के लक्ष्य की ओर प्रेरित करने लगता है, संसार के भोगों से वैराग्य बढ़ाने लगता है और वह पहुँच जाता है किसी संत-महापुरुष के सान्निध्य में।

भोगी पुरुष की अधिक सेवा करने से बुद्धि मंद हो जाती है, नीच प्रकृति के व्यक्तियों की सेवा करने से लाभ नहीं, वरन् हानि ज्यादा होती है जबकि उच्च प्रकृति के व्यक्तियों की सेवा करने और उनके सान्निध्य से परम लाभ होता है। इसीलिए तुलसीदासजी ने कहा है :

एक घड़ी आधी घड़ी, आधी में पुनि आध।
तुलसी संगत साधु की, हरे कोटि अपराध ॥

साधु कौन है ? **साध्यते परम कार्यं येन सः साधुः।**

जिसने अपना परम कार्य साध लिया है, उसे 'साधु' कहते हैं। मनुष्य को चाहिए कि वह प्रयत्नपूर्वक साधु पुरुषों की संगति करे एवं उनके मार्गदर्शन के अनुसार साधना करके लक्ष्य-प्राप्ति के पथ पर अग्रसर होता रहे।

तुलसीदासजी ने कहा है :

यह तन करु फल विषय न भाई।

इस शरीर का फल यह नहीं है कि विषय-भोग मिलें। इस मानव शरीर का फल तो है अपने

स्वामी को, परम प्यारे को, परम हितैषी परमात्मा को जानना। गीता में भगवान ने कहा भी है :

सुहृदं सर्वभूतानां... 'मैं प्राणिमात्र का सुहृद हूँ।' वास्तव में केवल वही परमात्मा सबका सुहृद है। संसार के जो लोग बाहर से सुहृद दिखते हैं वे तो चार-छः दिन के या केवल स्मशान तक के सुहृद हैं, जबकि वह परम सुहृद परमात्मा तो सदियों से हमारे साथ था, है और रहेगा। हम उस परम सुहृद से जुड़ जायें तो हमारा बेड़ा पार हो जाये।

व्यक्ति की जैसी मति और जैसा उसका संग होगा वैसे ही कर्त्तव्यों को वह मूल्य देगा। मति श्रेष्ठ है, संग ऊँचा है तो वह ऊँचे कर्त्तव्यों को मूल्य देगा। मति मध्यम है तो वह मध्यम कर्त्तव्यों को और मति हल्की है तथा उसका संग भी हल्का है तो फिर वह निम्न कर्त्तव्यों को मूल्य देगा।

यह हम जानते हैं फिर भी उससे जुड़ नहीं पाते। क्यों ? क्योंकि हम मन-इन्द्रियों से जुड़ जाते हैं, जगत को सच्चा मानकर उससे जुड़ जाते हैं और उसीमें इतने उलझ जाते हैं कि उस परम सुहृद से, उस अपने आत्मस्वरूप से जुड़ने का समय ही नहीं मिलता। हालाँकि हम सभी यह जानते हैं कि जगत के ये संबंध सदैव रहनेवाले नहीं हैं फिर भी हम उसीके पीछे लगे रहते हैं।

भोले बाबा ने बड़ी सुंदर बात कही है :

मानव ! तुझे नहीं याद क्या, तू ब्रह्म का ही अंश है ?
कुलगोत्र तेरा ब्रह्म है, सद्ब्रह्म का तू वंश है ॥
संसार तेरा घर नहीं, दो-चार दिन रहना यहाँ।
कर याद अपने राज्य की, स्वराज्य निष्कंटक जहाँ ॥

जो बदलती हुई चीजों को 'मेरा' मान लेता है और साधन को 'मैं' मान लेता है तथा वास्तविक साध्य का जिसको पता नहीं है, जिसके लिए साधन मिला है उस उद्देश्य का जिसको पता नहीं है- वह संसारी है। आँख देखने का साधन है, कान सुनने का साधन है, मन सोचने का साधन है, बुद्धि निर्णय करने का साधन है। इन साधनों का उपयोग करके हम चाहें तो अपने परम लक्ष्य परमात्मतत्त्व को पा सकते हैं लेकिन इन साधनों को ही 'मैं' मानने की गलती कर बैठते हैं इसीलिए बार-बार जन्मते-मरते रहते हैं।

यह जरूरी नहीं है कि हर जन्म में ये ही साधन और ऐसी ही बुद्धि मिले। यदि पशु-योनि मिलती है तो बुद्धि बहुत घट जाती है, मन की योग्यताएँ कम हो जाती हैं, शरीर की योग्यताएँ भी बदल जाती हैं। अरे, मनुष्य जन्म में ही बाल्यावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था में मन-बुद्धि-इन्द्रियों की क्षमता में अंतर आ जाता है, इतर योनियों की तो बात ही क्या? बचपन का मन बेवकूफी से भरा हुआ होता है, जवानी का मन विषय-विकारों से भरा हुआ होता है और बुढ़ापे का मन फरियाद से भरा हुआ होता है। लेकिन बचपन, जवानी और बुढ़ापा तो देह की अवस्थाएँ हैं, आपकी नहीं। आप न बालक हो न जवान हो न बूढ़े हो। वास्तव में जो आप हो उसमें न फरियाद है, न विकार है और न ही बेवकूफी है। आप तो सबमें व्याप्त, सदा एकरस आत्मा हो। अपने उस वास्तविक स्वरूप को जान लो तो हो जाये बेड़ा पार...

यदि मन अनात्म भोगों में स्थित होता है तो वह मनुष्य का शत्रु हो जाता है और वही मन अगर आत्मा-परमात्मा की ओर आकर्षित होता है, तो मित्र का काम करता है।

इसके लिए श्रवण, मनन और निदिध्यासन का सहयोग लो। जिसका अंतःकरण अत्यंत शुद्ध है वह तो श्रवणमात्र से ज्ञान पा सकता है। जिसके कुछ कल्मष शेष हैं वह पहले जप-ध्यानादि करके अंतःकरण को शुद्ध करे, यत्नपूर्वक श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन करे, तब उसे बोध

होगा। जो उससे भी ज्यादा बहिर्मुख है उसका मन तो जप-ध्यानादि में भी शीघ्र नहीं लगेगा। अतः वह पहले निष्काम सेवा के द्वारा अंतःकरण को शुद्ध करे। ज्यों-ज्यों अंतःकरण शुद्ध होता जायेगा, त्यों-त्यों जप-ध्यान में मन लगता जायेगा। फिर वह सत्शास्त्र एवं सद्‌गुरु के वचनों का श्रवण करे, मनन एवं निदिध्यासन करे तो ज्ञान को पा लेगा।

साधक को चाहिए कि वह सजातीय वृत्तियों का आदर करे और विजातीय वृत्तियों का त्याग कर दे। सजातीय वृत्ति क्या है ? जो आत्मज्ञान के मार्ग पर हैं उनसे आत्मज्ञान संबंधी शास्त्रों का श्रवण, मनन एवं आत्मवेत्ता महापुरुषों के सान्निध्य में रहने का भाव 'सजातीय वृत्ति' है।

आत्मज्ञान के पथिक को संसारी सुख के प्रसंगों से तो बचना ही चाहिए, संसारी सुख में जो उलझे हुए हैं ऐसे संसारियों से भी बचना चाहिए।

हम बदलनेवाले संसार को, बदलनेवाली परिस्थितियों को हृदय में इतनी जगह दे बैठे हैं कि चित्त की विश्रांति नहीं हो पाती है।

इस प्रकार सावधानी, सतर्कता, विवेक एवं वैराग्य को अपनाकर आप भी उसी तत्त्व को पा सकते हो, जिसमें भगवान श्रीराम, भगवान श्रीकृष्ण, ब्रह्माजी, भगवान शिव एवं अन्य अनेकों नामी-अनामी महापुरुष रमण कर रहे हैं।

अगर संत न होते...

अगर संत न होते जहाँ में,
तो डूब मरता संसार।
त्रिताप से तप्त जीवों को,
करते वे भवपार ॥

ब्रह्मज्ञानी महापुरुषों की उपस्थिति मात्र से कोटि-कोटि जीवों को शांति व आह्लाद का अनुभव होता है।

प्रभु को हृदयपूर्वक सर्वस्व अर्पण करो

सदैव अपना सर्वस्व प्रभु को हृदयपूर्वक अर्पण कर देना चाहिए और अर्पण करने का अहं भी हृदय में उत्पन्न नहीं होना चाहिए। प्रकृति के द्वारा स्वयं परमात्मा ही कार्य कर रहे हैं और उन्हीं की इच्छा से सब हो रहा है। फिर नाहक की इच्छा करके मन को चंचल क्यों करना ? व्यर्थ में शोक किसका करना ? प्रभु को ही सर्वस्व अर्पण करके कार्य करते रहें तो आनंद बना रहता है।

परमात्मा तो प्रकृति के द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को अपनी ओर खींचता है, फिर चाहे सुख देकर खींचे या दुःख देकर। अतः अपना व्यक्तित्व मिटाकर समष्टि के साथ एक होकर कार्य करें तो कार्य बोझस्वरूप नहीं लगेगा। 'प्रत्येक कार्य हो रहा है प्रकृति के द्वारा, मैं तो केवल साक्षी हूँ...' ऐसा समझकर हम कार्य करें तो सदैव परमात्मा में ही रहेंगे और पूरे विश्व में अपने प्रभु के स्वरूप का अनुभव करके आनंदित होते रहेंगे। इसी आनंद को पूर्ण रूप से लूटने के लिये प्रकृति यत्न कर रही है।

अपने जीवन के प्रत्येक क्षण में हमें केवल मुक्त होने के चिंतन की आदत डालनी है। जब तक शरीर है तब तक सुख-दुःख के प्रसंग तो आते ही रहेंगे।

उनमें फँसे बिना उन्हें पसार होने दो और अपने आत्मसुख-परमात्मसुख में तृप्त रहो। इसीमें मनुष्य जीवन की सार्थकता है। इस संसार में प्रत्येक व्यक्ति की स्थिति-परिस्थिति कभी एक जैसी नहीं रहती है और न ही रहनेवाली है। अतः बदलती हुई परिस्थितियों में ही बिना घबराये ज्ञानरूपी खड्ग से काम लेना है। जो हो चुका है, उस पर अब विचार करने की जरूरत नहीं है। वर्त्तमान कैसा है और उसमें क्या-क्या करना है, इतना ही विचारना है। साक्षी-द्रष्टा पर दृष्टि रखकर निर्लेप भाव से काम करते जाना है।

पढ़ी हुई, विचार की हुई बातों को घबराहट के प्रसंगों पर याद करके वर्त्तमान स्थिति को आनंदमय बनाने की कोशिश करना चाहिए। जहाँ मनुष्य हार जाता है वहाँ 'दैव का किया हुआ है...' ऐसी व्यावहारिक दृष्टि से संतोष कर सकता है लेकिन वास्तविक दृष्टि से देखें तो जगत भी नहीं है और दैव भी नहीं है। यदि प्रतिकूल परिस्थिति उत्पन्न ही न हो तो वैराग्य किससे उत्पन्न हो ? अतः उसमें किसीका दोष क्यों निकालें ? व्यावहारिक दृष्टि से जब तक जीवन है, तब तक ऐसा सब होता ही रहेगा।

अहंकार करने के लिये जब 'मैं' ही न रहा तो 'तू' कहाँ से आया ? यदि कोई है तो 'वही' यानी परमात्मा है। जब तक घड़ा पानी में डूबा रहता है, तब तक उसे पानी में कहीं भी ले जाओ तो उसका वजन नहीं लगता, किन्तु घड़े को पानी से बाहर निकालते ही वह भारी लगने लगता है। इसी प्रकार जब तक मन को ब्रह्म-परमात्मा में डुबाया हुआ रखेंगे, तब तक जगत का बोझ महसूस नहीं होगा लेकिन प्रभु से अपनेको भिन्न देखा तो दुःखरूपी भार तुरन्त ही महसूस होने लगेगा। वस्तुस्थिति यही है। अतः सर्वस्व प्रभु को अर्पण करके 'मैं-मेरा' का भाव शिथिल करते जाओ... मन से निकालते जाओ।

सुरक्षित नाव

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

एक बार मदालसा के छोटे पुत्र ने अपनी माँ से प्रश्न किया :

''हे कल्याणमयी पुण्यशीला माता ! मेरे सभी बड़े भाइयों को आपने उपदेश देकर जंगल में घोर तपस्या करने एवं कठिन जीवन बिताने के लिए क्यों प्रेरित किया ? आप तो माँ हैं। उन्हें भजन ही करना था तो वे आराम से महल में रहकर भी तो भजन कर सकते थे। हमारे पास बहुत-सा राज-वैभव है। उन्हें अलग से महल दे देते, नियमित भोजन मिलता, छोटा-सा बाग-बगीचा होता, भजन करने की सब सुविधाएँ हो सकती थीं। वे भी साधना करना चाहते थे और आप भी चाहती थीं कि वे साधना करें। फिर भी उन्होंने घर क्यों छोड़ा ?''

तब उस देवी ने कहा : ''पुत्र ! अगर किसी नदी को पार करना हो तो नाव की जरूरत पड़ती है। मान लो, एक सजी-धजी नाव सब सुविधाओं से युक्त हो किन्तु उसमें छिद्र हो तथा दूसरी नाव देखने में एकदम साधारण हो, किन्तु छिद्ररहित हो तो यात्री किस नाव से नदी पार कर सकेगा ? सुविधायुक्त छिद्रवाली नाव से अथवा छिद्ररहित कम सुविधाओंवाली नाव से ?''

पुत्र : ''बेशक, छिद्ररहित नाव से।''

मदालसा : ''ऐसे ही भोग-विलास में रहकर,

सुख-सुविधाओं के बीच रहकर भजन करना, छिद्रवाली नाव में बैठकर यात्रा करने जैसा है, जबकि एकांत में, आश्रम में रहकर भजन करना- यह सुरक्षित नाव में बैठकर यात्रा करने जैसा है। इसीलिए मैंने उन्हें वन में भेजा।''

जो लोग सोचते हैं कि 'अभी नहीं वरन् 'रिटायरमेन्ट' के बाद हम आराम से भजन करेंगे... बेटे-बेटी की शादी के बाद आराम से भजन करेंगे...' उनकी यह आराम से भजन करने की बात आखिर तक बात ही रह जाती है, उनका आराम हराम हो जाता है। फिर वे निराश होकर मर जाते हैं। अतः अभी से भजन करना शुरू कर दो। आराम से भजन नहीं, आराम के लिए भजन नहीं, वरन् प्रभु के लिए भजन करो। ईश्वर के लिए भजन करो। आज संसार के चिन्तन की जगह परमात्मचिंतन करो, उसीमें मशगूल रहो और अपने अंतःकरण को उन्नत करो तो बाकी का काम तो आपके थोड़े-से प्रयास से ही आराम से हो जायेगा और शाश्वत् आराम आपको अपने ही रामस्वरूप में, आत्मस्वरूप में मिलेगा। भोग-विलास और प्रमाद आपको खोखला बना देगा, अतः अपने ब्रह्म-परमात्मा में आराम पाओ।

जो लोग सोचते हैं कि 'अभी नहीं वरन् 'रिटायरमेन्ट' के बाद हम आराम से भजन करेंगे... बेटे-बेटी की शादी के बाद आराम से भजन करेंगे...' उनकी यह आराम से भजन करने की बात आखिर तक बात ही रह जाती है, उनका आराम हराम हो जाता है।

भोग-विलास में रहकर, सुख-सुविधाओं के बीच रहकर भजन करना, छिद्रवाली नाव में बैठकर यात्रा करने जैसा है, जबकि एकांत में, आश्रम में रहकर भजन करना- यह सुरक्षित नाव में बैठकर यात्रा करने जैसा है।

*

सुन्दर से भी सुन्दर

पांचालनरेश के राज्य में सब कुछ था। एक दिन एक चारण आकर राजा की स्तुति करने लगा :

''हमारे प्रतापी राजा साहब की जय हो... गौ-ब्राह्मणप्रतिपाल, दीन-दुःखियों के दुःख को दूर करनेवाले, राजाधिराज महाराज पांचालनरेश की जय हो...''

राजा : ''बस करो, चारण ! चुप रहो।''

चारण, मंत्री, वजीर आदि सब आश्चर्यचकित होकर देखने लगे।

चारण : ''राजन् ! मुझसे कुछ गलती हो गई क्या ?''

राजा : ''पांचालनरेश के लिए स्तुतियाँ सुनने का कोई अर्थ नहीं है। वह अपनी स्तुति सुनना नहीं चाहता। कोई और बात करो।''

किन्तु चारण के पास और क्या हो सकता है ? अतः उसने पुनः अलापा :

''राजाधिराज महाराज ! अमानी, अदंभी और निरहंकारी महाराज की जय हो...''

राजा : ''बस करो, चारण ! तुम्हें आज्ञा दी गयी है कि तुम मेरी स्तुति नहीं करोगे। अच्छा चारण ! एक बात मुझे बताओ। राज्य में कोई कमी तो नहीं है ? राज्य में यदि कोई कमी लगती हो तो वह मुझे बताओ।''

चारण सोचता रहा, फिर कुछ देर बाद बोला :

''राजन् ! एक चित्रशाला की जरूरत है। नगर में एक प्रदर्शनी का आयोजन किया जाए।''

राजा : ''ठीक है, आयोजन करवाओ।''

तिथि निश्चित की गयी। प्रदर्शनी में एक ध्वज फहराया गया। वह ध्वज इतना सुन्दर था कि सबको सहज ही आकर्षित कर रहा था। प्रदर्शनी में सबसे सुन्दर वस्तु वही ध्वज था।

एक-दो दिन प्रदर्शनी लगी रही, फिर उठाई जाने लगी। उसी समय राजा वहाँ घूमता-घामता

पहुँचा और उठाये गये सामान में से एक की ओर संकेत करते हुए उसने पूछा : ''यह क्या है ?''

''राजन् ! उस दिन जो ध्वज फहर रहा था, वही ध्वज है।''

राजा के मन में सहसा विचार आया कि : 'उस दिन ध्वज कितनी सुन्दरता से फहर रहा था और आज... इसकी क्या दशा हो गई है ! कचरे में पड़ा है। संसार में दिखनेवाली जितनी भी सुन्दर चीजें हैं, उनमें असुन्दरता ही तो भरी है। सुन्दर-सा दिखनेवाला पुष्प... दो दिन बाद देखो तो उसकी क्या हालत हो जाती है ? अर्थात् दिखनेवाली जो सुन्दरता है, वह स्थायी नहीं है अतः उसमें कब तक फँसना ?'

विवेक जाग उठा राजा का। पांचालनरेश ने तो केवल उस ध्वज की दुर्दशा देखी और उसका विवेक जाग उठा कि : 'दुनिया में जो कुछ भी सुन्दर दिखता है, उसके भीतर नश्वरता, असुन्दरता भरी पड़ी है। सावधान... राजन् !'

उसने उसी समय राज्य का त्याग कर दिया। फिर यह नहीं सोचा कि : 'राज्य का क्या होगा ? पत्नी का क्या होगा ? बच्चों का क्या होगा ?' वरन् वह चल पड़ा यह सोचकर कि : 'जो सुन्दर-में-सुन्दर परमात्मा है, मैं उसीकी खोज करूँगा।'

पांचालनरेश पहुँचा गुरुचरणों में और इतनी निष्ठा एवं लगन से साधना में जुट पड़ा कि सुन्दर-से-सुन्दर परमात्मा को उसने पा ही लिया।

सेवाधारियों एवं सदस्यों के लिए विशेष सूचना

(१) कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नगद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें। इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी। अतः अपनी राशि मनीआर्डर या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजने की कृपा करें।

(२) 'ऋषि प्रसाद' के नये सदस्यों को सूचित किया जाता है कि आपकी सदस्यता की शुरूआत पत्रिका की उपलब्धता के अनुसार कार्यालय द्वारा निर्धारित की जाएगी।

'ऋषि प्रसाद' स्वर्णपदक प्रतियोगिता

जैसा कि आपको पूर्वांक से विदित है कि 'ऋषि प्रसाद स्वर्णपदक प्रतियोगिता' के अंतर्गत पहले दस सेवाधारियों को गुरुपूर्णिमा के दिन पुरस्कृत किया जाएगा।

कई सेवाधारी इस कार्य में उत्साह से संलग्न हैं। प्राप्त कम्प्युटर रेकॉर्ड्स के अनुसार जिन पहले दस सेवाधारियों की सदस्य संख्या वर्त्तमान में अधिकतम चल रही है उन भाग्यशालियों के नाम निम्नानुसार हैं :

क्रम	नाम	शहर
१	श्री वजुभाई धोलडिया	सूरत
२	श्री वृंदावन गुप्ता	दिल्ली
३	श्रीमती जया कृपलानी	भोपाल
४	श्री संजीव धवन	सहारनपुर
५	श्री दिनेशभाई डी. जोशी	अमदावाद
६	श्री विमल के. हिंगु	जेतपुर
७	श्री संजय कुमार	चण्डीगढ़
८	श्री महेशचंद्र शर्मा	कलकत्ता
९	श्री राजेश जालान	बिलासपुर
१०	श्री पी. एल. मिश्रा	ग्वालियर

...तो आएँ... देर न करें... अभी भी बहुत समय है। अभी पाँच-साढ़े पाँच महीने बाकी हैं। आप भी इस प्रतियोगिता में सहभागी होकर दैवी कार्य में जुट जायें और आज ही अपना सेवाधारी क्रमांक और रसीद बुकें 'ऋषि प्रसाद' मुख्यालय, अमदावाद से प्राप्त करें।

कृपया याद रखें : व्यक्तिगत स्तर पर बनाये गये सदस्यों की संख्या ही इस प्रतियोगिता का आधार है, इसलिये सेवाधारी अपने द्वारा बनाये गये सदस्यों की रसीद बुक पर अपना सेवाधारी क्रमांक अवश्य लिखें।

समितियों के लिए खास सूचना

सत्संग का आयोजन करनेवाली समस्त समितियों को सूचित किया जाता है कि वे चंदा एकत्रित करने के लिए कोई भी रसीद बुक स्वयं न छपवाएँ। इसके लिए अमदावाद आश्रम से संपर्क करना अनिवार्य है।

पशुयोनि में संत

सुप्रसिद्ध तपस्वी श्री महन्त जगन्नाथदासजी डाँड़िया की जमात में एक ऊँट रहता था। यात्रा के दौरान ठाकुरजी का सब सामान, बरतन-भाँड़े आदि उसकी पीठ पर लाद दिये जाते थे। साधु लोग अपना आसन आदि भी उस पर रख देते थे। यदि कोई साधु पिछड़ गया और उसकी गठरी नहीं चढ़ायी जा सकी एवं वह पीछे दौड़ता हुआ गठरी रखने आया, तो वह ऊँट अपने आप तुरन्त बैठ जाता और उसकी गठरी रखवाकर चल देता। इससे उसके शील-गुण का परिचय मिलता है।

उसका नाम 'जानकीदास' था। बड़ी-बड़ी मनियाँ की तुलसीमाला उसके गले में पड़ी हुई थीं। आरती के समय सब साधुओं की तरह वह भी आता, आरती हो जाने तक खड़ा रहता, फिर बैठकर भगवत्-भागवत को नमन करके, एक आचमनी चरणामृत लेकर अपने आसन पर चला जाता। इस स्वभाव से उसकी आस्तिकता, धर्मनिष्ठा एवं सदाचारिता टपकती है। ये भागवत के लक्षण हैं।

एक बार श्री महन्तजी ने 'जानकीदास' नामधारी किसी दूसरे साधु को पुकारा। वे साधु तो आसन पर थे नहीं, किन्तु ऊँट जानकीदास स्वाभाविक रूप से अरबी भाषा में प्रसन्नता की ध्वनि करता हुआ पहुँच गया और महन्तजी के सामने खड़ा हो गया। इस चरित को देखकर सब लोग हँसने लगे। महन्तजी ने अपने गले का सुन्दर हार उसे पहना दिया। फिर ऊँट जानकीदास उसी अरबी भाषा में तुमुल हर्ष-ध्वनि करके अपने आसन पर चला गया।

उसका आहार विचित्र था। बड़े प्रातःकाल वह सेर भर गाँजे का दम लगाता था। सुविशाल दीर्घकाय चिलम में एक सेर गाँजा जमा दिया जाता था एवं उसे मिट्टी के हुक्के पर रख दिया जाता था। लंबी और बहुत ऊँची निगाली लगाकर उसके मुँह में पकड़ा दी जाती थी। ज्यों ही आग की एक चिनगी चिलम में डाली जाती थी, त्यों ही वह ऐसा दम खींचता था कि सब गाँजा एक ही फूँक में जल जाता था। देखनेवालों के लिए अपूर्व दृश्य उपस्थित हो जाता था। दोपहर को भण्डारे में जो कुछ भगवत्-प्रसाद का भोग लगता था, सब एक में मिलाकर एक छिछले किन्तु लंबे-चौड़े मिट्टी के बरतन में पाँच फीट ऊँचे काष्ठ-मंच पर रख दिया जाता था।

वह बड़ी रुचि से और ऐसी युक्ति से प्रसाद सेवन करता था कि एक दाना भी नीचे नहीं गिरता था। बरतन का प्रत्येक कोण तक चाट जाता था। फिर उसी मंच पर नाद रख दिया जाता था। उसमें ऊँचे पर से जल छोड़ा जाता था और वह पीता जाता था। संध्या समय नीम की दो पसेरी पत्ती चबा जाता था।

वह भगवत्कथा का बड़ा प्रेमी था। अपराह्न में, जब जमात में कथा होती, तब वह प्रतिदिन व्यासगादी के पीछे कुछ दूर पर बैठकर कथा सुनता था। जब कोई प्रसंग बहुत हृदयग्राही हुआ, तो अपनी अरबी भाषा में हर्षोत्फुल्ल होकर कुछ कह जाता था, जिसका तात्पर्य समुपस्थित लोग कुछ भी नहीं समझ सकते थे।

एक बार बियावर में पड़ाव पड़ा था। वहाँ अच्छे व शिक्षित मुसलमान लोग भी रहते थे। उनमें से एक मौलवी जमात में कथा सुनने आये हुए थे। व्यासजी श्री भरत-मिलाप का प्रसंग बाँच रहे थे। वक्ता और श्रोता सभी के नेत्रों से मोती के दाने झर रहे थे... सबके अंग पुलकित थे। प्रसंग ही प्रेम

का था, तब क्यों न सबकी एक-सी दशा हो ? ऊँट बाबा कई बार उठे और बैठे... अश्रुपात हो रहा था। आप अपनी बोली में बोल उठे : ''**कुलशय फ़िक़ाल ताला व तक़दुस...**''

इसको सुनकर उपस्थित मौलवी साहब आश्चर्यचकित हो गये। कथा समाप्ति पर उन्होंने श्री महन्तजी से कहा :

''आपका ऊँट तो 'कुरान शरीफ़' की एक आयत पढ़ रहा था। मालूम होता है कि उसे 'कुरान शरीफ़' हिफ़ज़ (कण्ठस्थ) है। मैं तो सुनकर हैरान हो गया। यह तो सच्चा और पक्का मुसलमान है। आपने इस बेशकीमती चीज़ को कहाँ से पाया ?''

महन्तजी ने जानकीदासजी का वृत्तान्त बड़े प्रेम से सुनाया। किस तरह एक मुग़ल सिपाही ने फ़ौज की कमान से लौटते हुए पेशावर में दो शाल, ढेरों मेवे, पचीस रूपये नक़द के साथ उस ऊँट को अर्पण किया था... ऊँट ने किस तरह गाँजा पीने की इच्छा संकेत द्वारा प्रकट की थी... और उसका पूरा प्रबन्ध किया गया... किस तरह तुलसीमाला गले में पहनाने और भगवद्-प्रसाद पाने की इच्छा मालूम की गयी... किस प्रेम और निष्ठा से वह भगवत्कैंकर्य (भगवद्-भागवत का सामान ढोना) करता है... कैसी अच्छी समझदारी है... आदि-आदि मुख्य-मुख्य सब बातें बताकर श्री महन्तजी ने कहा : ''यह जीव नाना प्रकार की योनियों में जन्म लेता है। पुनर्जन्म का चक्र चल रहा है। यह ऊँट पूर्वजन्म में मनुष्य ही रहा होगा और अरब की तरफ जन्मभूमि होने के कारण मुसलमान रहा होगा और 'कुरान शरीफ़' पढ़ा होगा। यह पशुयोनि प्राप्त होने पर भी उसके पूर्व के धार्मिक संस्कार बने हुए हैं, धर्माचरण ही में उसकी प्रवृत्ति है। आज तक किसी साधु को इसने रुष्ट नहीं होने दिया। गले की माला की गुरिया स्वयं खिसका करती है, जिससे विदित होता है कि भगवद्-भजन का सिलसिला बराबर जारी है।''

मौलवी ने कहा : ''मेरे पिताजी संस्कृत नहीं पढ़े हुए थे लेकिन गीता के श्लोक उन्हें ज़बानी याद थे। जब लोग पूछते कि बिना किसीसे पढ़े आपको यह ज्ञान कैसे हासिल हुआ, तब आप जवाब देते : 'इस जन्म में न सही तो उस जन्म का पढ़ा हुआ है।'

पुराने ज़माने में नैशापुर में एक मुस्लिम पाठशाला थी। उसका एक अध्यापक मरकर गदहा हो गया था। एक दिन ईंटों का बोझ उस पर लादकर जब मकतब (मदरसा) के द्वार पर उसे ले गये तब वह अड़ गया। सीढ़ी पर चढ़ता ही नहीं था, कितनी भी क्यों न उस पर मार पड़ती। वहाँ एक व्यक्ति रहता था, जो इस रहस्य को जानता था। उसने गदहे के कान में वही बात कह दी और गदहा तुरंत सीढ़ी पर चढ़ गया।''

एक बार हरिद्वार-कुम्भ पर जमात जा रही थी। मार्ग में वृन्दावन में पड़ाव पड़ा। फाल्गुन का महीना था। वृन्दावन की होली मनाकर चैत्र में जमात हरिद्वार के लिए प्रस्थान करनेवाली थी। रंग एकादशी अथवा शृंगारी एकादशी को प्रातःकाल ऊँट बाबा ने गाँजे की बड़ी चिलम, जल पीने का नाद और मिट्टी की तश्तरी फोड़ दी। यह असाधारण बात थी। ऐसा कभी नहीं हुआ था। सुनकर महन्तजी आये। उन्होंने फोड़ने का कारण पूछा। इसके उत्तर में ऊँट बाबा ने अगली दो टाँगों को उठाकर यह सूचित किया कि प्रस्थान का समय आ गया। तब महन्तजी ने फिर पूछा : ''जो तुम्हारी अंतिम इच्छा हो, उसे प्रकट करो।''

इसके उत्तर में ऊँट बाबा बैठ गये और दाहिने कान को ऊपर कर दिया। इसका तात्पर्य महन्तजी तुरन्त समझ गये। उन्होंने जल मँगाया। शुद्धि-संस्कार करके 'तारक मंत्र' का उपदेश दिया। उसी समय ऊँट बाबा का सिर फट गया और प्राण निकलकर आकाश में विलीन हो गये। 'जानकीदासजी ने पशुयोनि में आने पर भी योगियों की-सी परम गति पायी...' इस विचार से हर्षित होकर सब लोग जय-जयकार करने लगे।

रघुपति चरन उपासक जेते। खग मृग सुर नर असुर समेते॥
बन्दौं पद-सरोज सब केरे। जे बिनु काम राम के चेरे॥

एकादशी माहात्म्य

[जया एकादशी : १६ फरवरी २०००]

युधिष्ठिर ने भगवान श्रीकृष्ण से पूछा :

''भगवन् ! कृपा करके यह बताइये कि माघ मास के शुक्ल पक्ष में कौन-सी एकादशी होती है, उसकी विधि क्या है तथा उसमें किस देवता का पूजन किया जाता है ?''

भगवान श्रीकृष्ण बोले : ''राजेन्द्र ! माघ मास के शुक्ल पक्ष में जो एकादशी होती है, उसका नाम 'जया' है। वह सब पापों को हरनेवाली उत्तम तिथि है। पवित्र होने के साथ ही पापों का नाश करनेवाली तथा मनुष्यों को भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली है । इतना ही नहीं, वह ब्रह्महत्या जैसे पाप तथा पिशाचत्व का भी विनाश करनेवाली है । इसका व्रत करने पर मनुष्यों को कभी प्रेतयोनि में नहीं जाना पड़ता। इसलिये राजन् ! प्रयत्नपूर्वक 'जया' नाम की एकादशी का व्रत करना चाहिये ।

एक समय की बात है । स्वर्गलोक में देवराज इन्द्र राज्य करते थे। देवगण पारिजात वृक्षों से युक्त नंदनवन में अप्सराओं के साथ विहार कर रहे थे। पचास करोड़ गन्धर्वों के नायक देवराज इन्द्र ने स्वेच्छानुसार वन में विहार करते हुए बड़े हर्ष के साथ नृत्य का आयोजन किया। गन्धर्व उसमें गान कर रहे थे, जिनमें पुष्पदन्त, चित्रसेन तथा उसका पुत्र- ये तीन प्रधान थे। चित्रसेन की स्त्री का नाम मालिनी था। मालिनी से एक कन्याउत्पन्न हुई थी, जो पुष्पवन्ती के नाम से विख्यात थी। पुष्पदन्त गन्धर्व के एक पुत्र था, जिसको लोग माल्यवान् कहते थे। माल्यवान् पुष्पवन्ती के रूप पर अत्यन्त मोहित था। ये दोनों भी इन्द्र के संतोषार्थ नृत्य करने के लिये आये थे । इन दोनों का गान हो रहा था। इनके साथ अप्सराएँ भी थीं । परस्पर अनुराग के कारण ये दोनों मोह के वशीभूत हो गये । चित्त में भ्रान्ति आ गयी इसलिये वे शुद्ध गान न गा सके। कभी ताल भंग हो जाता था और कभी गीत बंद हो जाता था। इन्द्र ने इस प्रमाद पर विचार किया और इससे अपना अपमान समझकर वे कुपित हो गये ।

अतः इन दोनों को शाप देते हुए बोले : ''ओ मूर्खों ! तुम दोनों को धिक्कार है ! तुम लोग पतित और मेरी आज्ञा भंग करनेवाले हो, अतः पति-पत्नी के रूप में रहते हुए पिशाच हो जाओ ।''

इन्द्र के इस प्रकार शाप देने पर इन दोनों के मन में बड़ा दुःख हुआ। वे हिमालय पर्वत पर चले गये और पिशाचयोनि को पाकर भयंकर दुःख भोगने लगे। शारीरिक पातक से उत्पन्न ताप से पीड़ित होकर दोनों ही पर्वत की कन्दराओं में विचरते रहते थे । एक दिन पिशाच ने अपनी पत्नी पिशाची से कहा :

''हमने कौन-सा पाप किया है, जिससे यह पिशाचयोनि प्राप्त हुई है ? नरक का कष्ट अत्यन्त भयंकर है तथा पिशाचयोनि भी बहुत दुःख देनेवाली है। अतः पूर्ण प्रयत्न करके पाप से बचना चाहिये ।''

इस प्रकार चिन्तामग्न होकर वे दोनों दुःख के कारण सूखते जा रहे थे । दैवयोग से उन्हें माघ मास की एकादशी की तिथि प्राप्त हो गयी। 'जया' नाम से विख्यात वह तिथि सब तिथियों में उत्तम है । उस दिन उन दोनों ने सब प्रकार के आहार त्याग दिये, जलपान तक नहीं किया। किसी जीव की हिंसा नहीं की, यहाँ तक कि खाने के लिए फल तक नहीं काटा। निरन्तर दुःख से युक्त होकर वे एक पीपल के समीप बैठे रहे । सूर्यास्त हो गया।

उनके प्राण हर लेनेवाली भयंकर रात्रि उपस्थित हुई। उन्हें नींद नहीं आयी। वे रति या और कोई सुख भी नहीं पा सके।

सूर्योदय हुआ। द्वादशी का दिन आया। इस प्रकार उस पिशाच दंपति के द्वारा 'जया' के उत्तम व्रत का पालन हो गया। उन्होंने रात में जागरण भी किया था। उस व्रत के प्रभाव से तथा भगवान विष्णु की शक्ति से उन दोनों का पिशाचत्व दूर हो गया। पुष्पवन्ती और माल्यवान् अपने पूर्वरूप में आ गये। उनके हृदय में वही पुराना स्नेह उमड़ रहा था। उनके शरीर पर पहले जैसे ही अलंकार शोभा पा रहे थे।

वे दोनों मनोहर रूप धारण करके विमान पर बैठे और स्वर्गलोक में चले गये। वहाँ देवराज इन्द्र के सामने जाकर दोनों ने बड़ी प्रसन्नता के साथ उन्हें प्रणाम किया।

उन्हें इस रूप में उपस्थित देखकर इन्द्र को बड़ा विस्मय हुआ! उन्होंने पूछा: ''बताओ, किस पुण्य के प्रभाव से तुम दोनों का पिशाचत्व दूर हुआ है? तुम मेरे शाप को प्राप्त हो चुके थे, फिर किस देवता ने तुम्हें उससे छुटकारा दिलाया है?''

माल्यवान् बोला : ''स्वामिन्! भगवान वासुदेव की कृपा तथा 'जया' नामक एकादशी के व्रत से हमारा पिशाचत्व दूर हुआ है।''

इन्द्र ने कहा : ''...तो अब तुम दोनों मेरे कहने से सुधापान करो। जो लोग एकादशी के व्रत में तत्पर और भगवान श्रीकृष्ण के शरणागत होते हैं, वे हमारे भी पूजनीय होते हैं।''

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं : ''राजन्! इस कारण एकादशी का व्रत करना चाहिये। नृपश्रेष्ठ! 'जया' ब्रह्महत्या का पाप भी दूर करनेवाली है। जिसने 'जया' का व्रत किया है, उसने सब प्रकार के दान दे दिये और सम्पूर्ण यज्ञों का अनुष्ठान कर लिया। इस माहात्म्य के पढ़ने और सुनने से अग्निष्टोम यज्ञ का फल मिलता है।''

('पद्मपुराण' से)

परम पूज्य आसाराम बापूजी,

जब मैं पाँच-छः साल का बच्चा था तो आपसे १९८१ में मिला था और उस समय मुझमें खूब गुस्सा और पागलपन था। उस वक्त मैंने आपसे झगड़ा करके फल लेना चाहा था। आपने सब वापस ले लिया और 'कुछ नहीं दूँगा' ऐसा कहा था। फिर आँखों-आँखों में दो-तीन मिनट युद्ध चालू रहा और इसके बाद आपके अपार प्रेम का दर्शन हुआ। आपने फल की पूरी टोकरी मुझे दे दी थी और कहा था: **''जा बेटा! तुझमें से मुझे जो लेना था वह ले लिया और मुझको तुझे जो देना था वह दे दिया।** अब तेरी आत्मा प्रज्वलित हो गयी और तू बड़ा होकर देश-दुनिया में नाम करेगा।''

अब मैंने बी.एससी. (इलेक्ट्रॉनिक्स) 'गोल्ड मेडल' (स्वर्ण तगमा) और एम.बी.ए. (सूचना तकनीकी) दो 'गोल्ड मेडल्स' (स्वर्ण तगमों) के साथ पूरा किया है। उसके बाद जावा (Java) अर्थात् World Wide Web, Geneva, Switzerland का Certified Web Master 'कोर्स' किया है। कुछ ही महीनों में अमेरिका से आमंत्रण (Offer) आनेवाली है। वर्त्तमान में मैं गुजरात सरकार के सूचना तकनीकी मंत्रालय में चीफ़ एक्जीक्यूटिव के पद पर कार्यरत हूँ। सूचना तकनीकी के क्षेत्र में गुजरात को आगे ले जाने की मेरी तमन्ना है और साथ ही इसी क्षेत्र में भारत का नाम रोशन करना चाहता हूँ। आशा है कि पहले जैसे फिर से आपका आशीर्वाद मिले और विदेश स्थित आपके आश्रम में सेवा दे सकूँ और आपका नाम बढ़ा सकूँ।

आपका बेटा,
- सौमिल रावल
चीफ़ एक्जीक्यूटिव
सूचना तकनीकी मंत्रालय, गुजरात सरकार।

गाजर

गाजर को उसके प्राकृतिक रूप में ही अर्थात् कच्चा खाने से ज्यादा लाभ होता है। उसके भीतर का पीला भाग निकालकर खाना चाहिए क्योंकि वह अत्यधिक गरम होता है अतः पित्तदोष, वीर्यदोष एवं छाती में दाह उत्पन्न करता है।

गाजर स्वाद में मधुर-कसैली-कड़वी, तीक्ष्ण, स्निग्ध, उष्णवीर्य, गरम, दस्त को बाँधनेवाली, मूत्रल, हृदय के लिए हितकर, रक्त शुद्ध करनेवाली, कफ निकालनेवाली, वातदोषनाशक, पुष्टिवर्धक तथा दिमाग एवं नस-नाड़ियों के लिए बलप्रद है। यह अफारा, संग्रहणी, बवासीर, पेट के रोगों, सूजन, खाँसी, पथरी, मूत्रदाह, मूत्राल्पता तथा दुर्बलता का नाश करनेवाली है।

गाजर के बीज गरम होते हैं अतः गर्भवती महिलाओं को उनका उपयोग कभी नहीं करना चाहिए। बीज पचने में भारी होते हैं। गाजर में आलू से छः गुना ज्यादा कैल्शियम होता है। कैल्शियम एवं केरोटीन की प्रचुर मात्रा होने के कारण छोटे बच्चों के लिए यह एक उत्तम आहार है। रूसी डॉक्टर मेकनिकोफ के अनुसार गाजर में आँतों के हानिकारक जन्तुओं को नष्ट करने का अद्भुत गुण पाया जाता है। इसमें विटामिन 'ए' भी काफी मात्रा में पाया जाता है अतः यह नेत्ररोगों में भी लाभदायक है।

गाजर रक्त शुद्ध करनेवाली है। १०-१५ दिन केवल गाजर के रस पर रहने से रक्तविकार, गाँठ, सूजन एवं पाण्डुरोग जैसे त्वचा के रोगों में लाभ होता है। इसमें लौह तत्त्व भी प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। **खूब चबाकर गाजर खाने से दाँत मजबूत, स्वच्छ एवं चमकदार होते हैं तथा मसूढ़े मजबूत होते हैं।**

विशेष : गाजर के भीतर का पीला भाग खाने से अथवा गाजर खाने के बाद ३० मिनट के अंदर पानी पीने से खाँसी होती है। अत्यधिक मात्रा में गाजर खाने से पेट में दर्द होता है। ऐसे समय में थोड़ा गुड़ खायें। अधिक गाजर वीर्य का क्षय करती है। पित्तप्रकृति के लोगों को गाजर का कम एवं सावधानीपूर्वक उपयोग करना चाहिए।

❊ औषधि-प्रयोग ❊

१. दिमागी कमजोरी : गाजर के रस का नित्य सेवन करने से कमजोरी दूर होती है।

२. दस्त : गाजर का सूप लाभदायक है।

३. सूजन : मरीज को सब आहार त्यागकर केवल गाजर के रस अथवा उबली हुई गाजर पर रहने से लाभ होता है।

४. मासिक न दिखने पर या कष्टार्तव : मासिक कम आने पर या समय होने पर भी न आने पर गाजर के ५ ग्राम बीजों का २० ग्राम गुड़ के साथ काढ़ा बनाकर लेने से लाभ होता है। एलोपैथिक गोलियाँ जो मासिक को नियमित करने के लिए ली जाती हैं, वे हानिकारक होती हैं।

५. पुराने घाव : गाजर को उबालकर उसकी पुल्टिस बनाकर घाव पर बाँधने से लाभ होता है।

६. खाज : गाजर को कद्दूकस करके अथवा बारीक पीसकर उसमें थोड़ा नमक मिला लें और पानी डाले बिना उसे गर्म करके खाज पर रोज बाँधने से लाभ होता है।

७. आधासीसी : गाजर के पत्तों पर दोनों ओर घी लगाकर उन्हें गर्म करें। फिर उनका रस निकालकर २-३ बूँदें कान एवं नाक में डालें। इससे आधासीसी का दर्द मिटता है।

८. श्वास-हिचकी : गाजर के रस की ४-५ बूँदें दोनों नथुनों में डालने से लाभ होता है।

९. नेत्ररोग : दृष्टिमंदता, रतौंधी, पढ़ते समय आँखों में तकलीफ होना आदि रोगों में कच्ची गाजर या उसके रस का सेवन लाभप्रद है। यह प्रयोग चश्मे का नंबर घटा सकता है।

१०. पाचन संबंधी गड़बड़ी : अरुचि, मंदाग्नि, अपच आदि रोगों में गाजर के रस में नमक, धनिया, जीरा, कालीमिर्च, नींबू का रस डालकर पियें अथवा गाजर का सूप बनाकर पियें।

११. पेशाब की तकलीफ : गाजर का रस पीने से खुलकर पेशाब आता है, रक्तशर्करा भी कम होती है। गाजर का हलवा खाने से पेशाब में कैल्शियम, फास्फोरस का आना बंद हो जाता है।

१२. नकसीर फूटना : ताजी गाजर का रस अथवा उसकी लुगदी सिर पर एवं ललाट पर लगाने से लाभ होता है।

१३. जलने पर : जलने से होनेवाली दाह में प्रभावित अंग पर बार-बार गाजर का रस लगाने से लाभ होता है।

१४. हृदयरोग : हृदय की कमजोरी अथवा धड़कनें बढ़ जाने पर गाजर को भून लें या उबाल लें। फिर उसे रातभर के लिए खुले आकाश में रख दें। सुबह उसमें मिश्री तथा केवड़े या गुलाब का अर्क मिलाकर रोगी को देने से लाभ होता है अथवा उसे रोज २-३ बार कच्ची गाजर का रस पिलायें।

१५. प्रसवपीड़ा : यदि प्रसव के समय स्त्री को अत्यंत कष्ट हो रहा हो तो गाजर के बीजों के काढ़े में एक वर्ष का पुराना गुड़ डालकर गरम-गरम पिलाने से प्रसव जल्दी होता है।

१६ फरवरी से १५ मार्च ई. स. २०००

तिथि	वार	दि.	पर्वादि विवरण
मा.शु.प. ११/१२	बुध	१६ फ.	जया एकादशी (भागवत)-भीष्म द्वादशी
मा.शु.प. १३	गुरु	१७"	विश्वकर्मा जयंती मोढेश्वरी माता पाटोत्सव - सिद्धियोग सूर्योदय से १५-०५ - गुरुपुष्यामृत योग १५-०५ से सूर्योदय
मा.शु.प. १५	शनि	१९"	व्रत पूर्णिमा - माघी पूर्णिमा - माघ स्नान समाप्ति - गुरु रविदास जयंती - सौर वसंत ऋतु प्रारंभ
फा.गुज.मा.कृ.प.१	रवि	२०"	गुरुप्रतिपदा - गाणगापुर यात्रा
फा.गुज.मा.कृ.प.२	सोम	२१"	संकष्ट चतुर्थी (चंद्रोदय २१-१९) - मोढेश्वरी माता प्राकट्य
फा.गुज.मा.कृ.प. ८	रवि	२७"	जानकी जन्म कालाष्टमी - अष्टका श्राद्ध
फा.गुज.मा.कृ.प. ९	सोम	२८"	श्री रामदास नवमी - अन्वष्टका श्राद्ध
फा.गुज.मा.कृ.प.११	बुध	१ मा.	विजया एकादशी (स्मार्त)
फा.गुज.मा.कृ.प.१२	गुरु	२ "	विजया एकादशी (भागवत)
फा.गुज.मा.कृ.प.१२	शुक्र	३ "	श्रवणोपवास
फा.गुज.मा.कृ.प.१३	शनि	४ "	महाशिवरात्रि (निशीथ काल २४-२६ से २५-१५)
फा.गुज.मा.कृ.प.१४	रवि	५ "	दर्श अमावस्या
फा.गुज.मा.कृ.प.३०	सोम	६ "	सोमवती अमावस्या
फा.शु.प. १	मंगल	७ "	चंद्रदर्शन - सिद्धियोग ७-२० से सूर्योदय - पयोव्रतारंभ
फा.शु.प. २	बुध	८ "	श्री रामकृष्ण जयंती
फा.शु.प. ३	गुरु	९ "	विनायक चतुर्थी
फा.शु.प. ४	शुक्र	१०"	संत चतुर्थी (उडीसा)
फा.शु.प. ६	शनि	११"	आचार्य सुंदर साहेब पुण्यतिथि - गोरूपिणी षष्ठी - अमृतसिद्धियोग २७-५२ से सूर्योदय
फा.शु.प. ७	रवि	१२"	अठ्ठाई प्रारंभ
फा.शु.प. ८	सोम	१३"	दुर्गाष्टमी - होळाष्टक प्रारंभ
			अमृतसिद्धियोग सूर्योदय से २५-१५
फा.शु.प. ९	मंगल	१४"	श्रीहरि जयंती - संक्रांति पुण्यकाल ८-५३ से १५-१७

(जनहित में प्रसारित)

गुटखा खानेवालों के लिये इनामी योजना

गुटखा खाओ... पुरस्कार पाओ

योजना अवधि	:	आज ही से जीवनपर्यंत
प्रथम पुरस्कार	:	कैन्सर
द्वितीय पुरस्कार	:	गले हुये गाल
तृतीय पुरस्कार	:	छोटा मुँह
चतुर्थ पुरस्कार	:	जवानी में बुढ़ापा
पाँचवाँ पुरस्कार	:	गुर्दा खराब
छठवाँ पुरस्कार	:	खाँसी, कफ में वृद्धि, दाँत गायब
सातवाँ पुरस्कार	:	'राम नाम सत्य है...'
फार्म का प्राप्तिस्थान	:	पान की दुकान, रेलवे प्लेटफॉर्मों व बस अड्डों के स्टालों पर
फार्म शुल्क	:	१ रुपये से ६ रुपये तक
पुरस्कार स्थल	:	श्मशान घाट
मुख्य अतिथि	:	यमराज

अति शीघ्र ही उपरोक्त योजना का लाभ उठाओ।

नोट : हर गुटखे के साथ कमजोरी मुफ्त

संस्था-समाचार

भावनगर (गुज.) : अनेकानेक संत-महात्माओं की अवतरणभूमि काठियावाड़ के भावनगर में ७ से ९ जनवरी २००० तक त्रिदिवसीय 'गीता-भागवत सत्संग समारोह' संपन्न हुआ। सत्संग समारोह के पूर्व ४ जनवरी को स्थानीय 'पू. आसारामजी बापू साधक परिवार' द्वारा शहर में विशाल संकीर्तन यात्रा निकाली गई थी। मोतीबाग टाउनहॉल से निकली एवं नगर के विभिन्न भागों को हरिनाम संकीर्तन से सराबोर करती हुई इस संकीर्तन यात्रा की पूर्णाहुति शाम ७ बजे हुई।

सत्संग समारोह में सत्संग-प्रेमियों की संख्या दिनोंदिन बढ़ती ही जाती थी। आत्मवेत्ता पूज्य बापू की आत्मस्पर्शी अमृतवाणी का रसपान करने उमड़ पड़ा था जनसैलाब। ज्ञान, भक्ति व ध्यान का अपूर्व संगम था यह सत्संग समारोह।

८ जनवरी का पहला सत्र नगर के विभिन्न विद्यालयों से आये हुए नौनिहालों के लिए था जिसमें पूज्यश्री ने उद्यम, साहस, धैर्य, बुद्धि, शक्ति व पराक्रम जैसे सद्गुणों को विकसित करने पर जोर दिया, उसके प्रयोग बताये और ऐतिहासिक घटनाओं पर पूज्य बापू ने सारगर्भित सत्संग-कथा के द्वारा ऐसा सुन्दर-सुहावना, मनभावन स्नेहसहित प्रकाश डाला कि गुजरात के सीधे-सादे काठियावाड़ी विद्यार्थियों में भी साहसी होने का सद्भाव जगा। उनके चेहरे पर एवं आँखों में चमक-सी आ गयी। धनभागी हैं उन बालक-बालिकाओं के माता-पिता और शिक्षक-शिक्षिकाएँ जो ऐहिक विद्या के साथ योगविद्या और आत्मविद्या का प्रसाद इन निर्दोष नन्हों को दिलाकर भारत का भविष्य उज्ज्वल देखना चाहते हैं। परीक्षा में सफलता के अनेक सूत्र पूज्य बापू ने बताये। स्मरण-शक्ति बढ़ाने के लिए भ्रामरी प्राणायाम, योगासन व अनेक यौगिक प्रयोग कराये गये।

वल्लभीपुर (गुज.) : यहाँ के नवनिर्मित आश्रम का उद्घाटन दिनांक : १० जनवरी २००० को पूज्यश्री के करकमलों से हुआ। आश्रम-प्रांगण में आयोजित एक दिवसीय सत्संग कार्यक्रम में वल्लभीपुर के अलावा आसपास के ग्राम्यजनों का बड़ी संख्या में आगमन हुआ। नवनिर्मित इस आध्यात्मिक प्याऊ में प्रति रविवार व गुरुवार को शाम ३-३० से ५-३० बजे तक नियमित रूप से सत्संग-कीर्तन के आयोजन की घोषणा स्थानीय समिति द्वारा की गई।

अमदावाद (गुज.) : भीष्म पितामह को परलोकगमन के लिए उत्तरायण की शुभ बेला का इंतजार था। उसी उत्तरायण की शुभ तिथि को प्रतिवर्ष अमदावाद आश्रम में 'ध्यान योग शिविर' का आयोजन किया जाता है। पूज्य गुरुदेवश्री के आध्यात्मिक स्पंदनों व मार्गदर्शन से परिपूर्ण इस शिविर का इंतजार बेसब्री से किया जा रहा था। आखिर वह घड़ी आ गई। १३ जनवरी की शाम पूज्यश्री आश्रम पहुँचे जहाँ हजारों भक्त पलकें बिछाए उनका इन्तजार कर रहे थे।

१४ से १६ जनवरी २००० तक चले हुए ध्यान योग शिविर में **'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'** के मंत्रोच्चार के साथ ही पूज्यश्री ने ध्यान के गहरे प्रयोग कराये। उत्तरायण के पावन पर्व पर जीवन में उत्तरोत्तर प्रगति की, आगे बढ़ने की प्रेरणा पूज्यपाद बापू ने दी। पूज्यश्री ने भीष्म पितामह की प्रतिज्ञा की याद दिलाते हुए हमारे जीवन में भी कोई शुभ

संकल्प, नियम-व्रत लेने व करने की आवश्यकता पर जोर दिया।

दिनांक : १७ जनवरी को देशभर से आये हुए **'ऋषि प्रसाद' सेवाधारियों** व **अखिल भारतीय योग वेदान्त सेवा समितियों** की बैठक संपन्न हुई।

नड़ियाद (गुज.) : २० से २३ जनवरी तक चार दिवसीय **'गीता भागवत सत्संग'** व **'पूर्णिमा महोत्सव'** संपन्न हुआ। पूनम दर्शनोत्सव व सत्संग-प्रवचन का प्रारंभ ब्राह्मण विद्यार्थियों के द्वारा वेदपाठ से हुआ। २२ जनवरी का प्रातःकालीन सत्र विशेष रूप से विद्यार्थियों के लिए था जिसमें गुजरात के खेड़ा जिले के अलावा आणंद, पंचमहाल, बड़ौदा, अमदावाद, मेहसाणा, सूरत आदि अनेक स्थानों से बड़ी संख्या में आये हुए विद्यार्थीगण शामिल हुए। पूज्यश्री की अनुभवसंपन्न वाणी ने विद्यार्थियों में एक नई उमंग व उत्साह का संचार कर दिया।

गुरुदेवश्री के पावन सान्निध्य में आयोजित सत्संग-प्रवचन किसी जाति या संप्रदाय-विशेष के लिए नहीं, वरन् मानवमात्र के लिए होता है। हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई- सभी इस सत्संग कार्यक्रम में दृष्टिगोचर हो रहे थे। यहाँ के सेंट एन, सेंट मेरी आदि क्रिश्चियन विद्यालयों तथा दूर-दराज के विभिन्न विद्यालयों से आये हुए करीब २३००० छात्र-छात्राओं ने स्वस्थ, सफल व उज्ज्वल जीवन जीने की कुंजियाँ प्राप्त कीं।

निःशुल्क दंत चिकित्सा शिविर : संत श्री आसारामजी आश्रम की ओर से ऋषियों की सुंदर देन। बिना दवाई के, बिना दर्द के, बिना इंजेक्शन के निःशुल्क दंत चिकित्सा शिविर का आयोजन प्रांतिज (गुज.) में किया गया। इसमें ६०० मरीजों ने लाभ लिया। केवल एक डॉक्टर ने ४०० मरीजों के दाँत निकाले। **जो समिति इस तरह का आयोजन करना चाहती है, वह अखिल भारतीय योग वेदांत सेवा समिति, अमदावाद से संपर्क करे।**

अन्य सत्संग-कार्यक्रम

दिनांक	शहर	कार्यक्रम	समय	स्थान	संपर्क फोन
१७ फरवरी	गोधरा	विद्यार्थी उत्थान शिविर	-	संत श्री आसारामजी आश्रम, गोधरा, जि. पंचमहाल, गुजरात।	(०२६७२) ४७७७८
१८ से २० फरवरी	गोधरा	ध्यान योग शिविर	-	संत श्री आसारामजी आश्रम, गोधरा, जि. पंचमहाल, गुजरात।	(०२६७२) ४७७७८
२० से २२ फरवरी	डोंबीवली (मुंबई)	सत्संग समारोह प्रथम दो दिन श्री सुरेशानंदजी द्वारा	सुबह ९ से ११-३० शाम ६ से ८-३०	कल्याण-डोंबीवली महानगरपालिका क्रीड़ासंकुल, पेंढारकर कॉलेज के पास, M.I.D.C., डोंबीवली (पू.)	(०२५१) ४९९६२०, ४४४०१७, ४८०५१५, ४८३८६६
२४ से २७ फरवरी	गोरेगाँव (मुंबई)	सत्संग समारोह	-	-	८७६९२०७, ८७५०५०७
२६ से २८ फरवरी	औरंगाबाद	सत्संग समारोह प्रथम दो दिन श्री वासुदेवानंदजी द्वारा	सुबह १० से १२ शाम ३-३० से ५-३०	-	३३६८७२
२७ से २९ फरवरी	अहमदनगर	सत्संग समारोह प्रथम दो दिन श्री सुरेशानंदजी द्वारा	सुबह १० से १२ शाम ३-३० से ५-३०	-	३२५२६६
२८ फरवरी से १ मार्च	पींपरी/पूना	सत्संग समारोह प्रथम दो दिन श्री वासुदेवानंदजी द्वारा	सुबह १० से १२ शाम ३-३० से ५-३०	-	७४०६१७, ७४१६७०
२ से ५ मार्च	नासिक	सत्संग समारोह	-	-	५०४६४५, ५७८७१७.
८ से १० मार्च	बोईसर मुंबई	सत्संग समारोह प्रथम दो दिन श्री सुरेशानंदजी द्वारा	-	M.I.D.C. ग्राउण्ड, खेरा फाटक, रेलवे स्टेशन के पास, बोईसर, ता. पालघर (थाणे).	७०७०३, ७२७४०.
१० से १२ मार्च	वापी	सत्संग समारोह प्रथम दो दिन श्री वासुदेवानंदजी द्वारा	-	वापी, ता. पारड़ी, जि. वलसाड़ (गुज.).	२४४४१
११ से १३ मार्च	भैरवी	सत्संग समारोह प्रथम दो दिन श्री सुरेशानंदजी द्वारा	-	भैरवी, जि. वलसाड़(गुज.).	(०२६३४) २२७८५
१३ से १५ मार्च	व्यारा	सत्संग समारोह प्रथम दो दिन श्री सुरेशानंदजी द्वारा	-	व्यारा, जि. सूरत (गुज.).	
१७ से २० मार्च	सूरत	होली ध्यान योग शिविर	-	संत श्री आसारामजी आश्रम, जहाँगीरपुरा, वरियाव रोड, सूरत।	७६५३४१, ७६७९३६.

पूर्णिमा दर्शन : १९ फरवरी २००० गोधरा (गुज.) में।

मानव शरीर के एक्युप्रेशर प्रतिबिम्ब केन्द्र
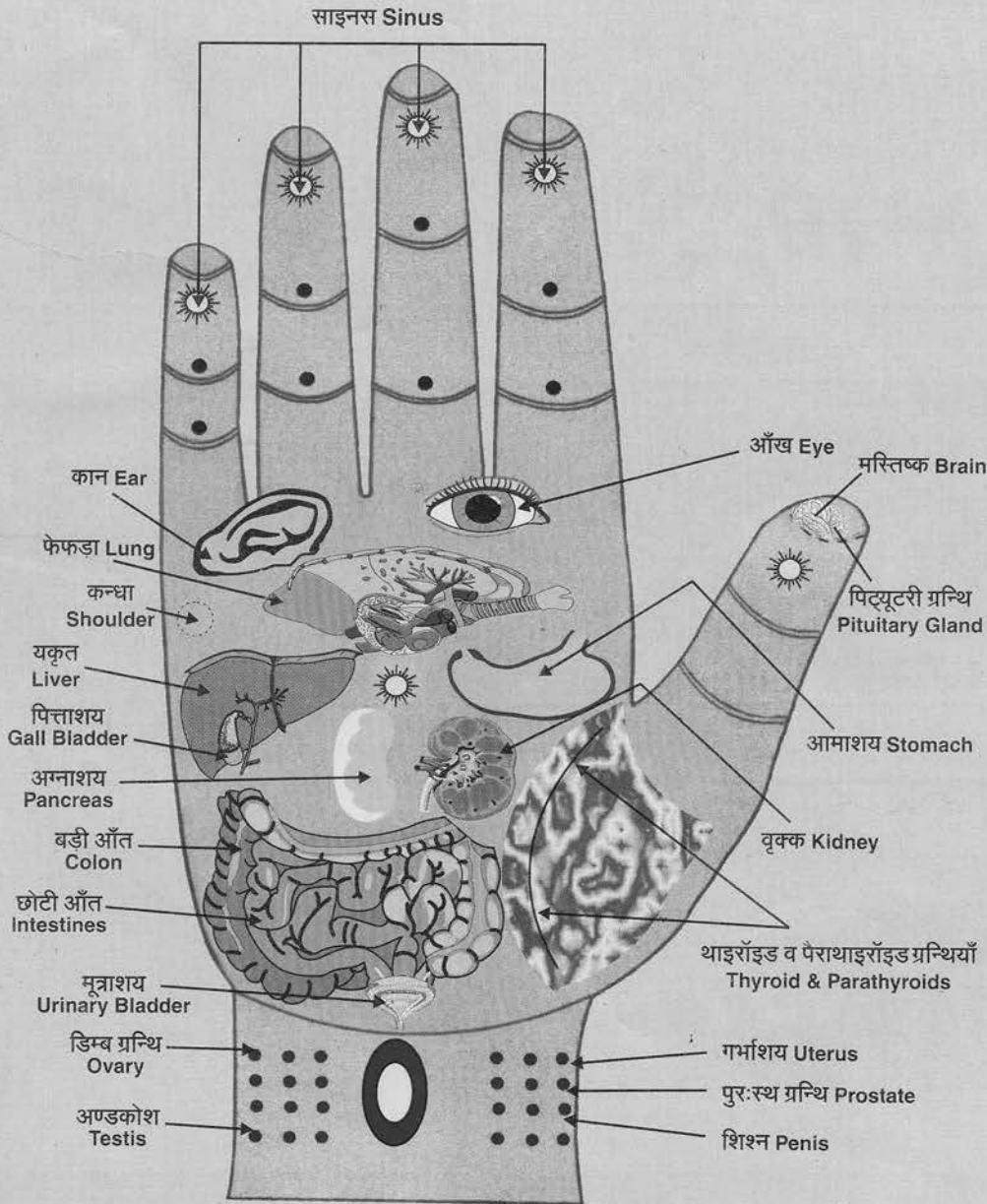
बिन्दु के दबाव के कारण संपूर्ण मानव शरीर में रक्त–संचारण बना रहता है।

एक्युप्रेशर में विभिन्न दबाव–बिन्दुओं के प्रयोग से शरीर की अनेक व्याधियाँ दूर हो जाती हैं।

इतना ही नहीं, यदि मनुष्य तनावग्रस्त हो, बेहद थका हुआ हो, गंभीर बिमारी एवं दर्द में हो तो इसका प्रयोग एक चमत्कार सिद्ध हुआ है।

रोगों को बिना दवा के दूर रखने की यह सबसे आसान एवं सरल प्राकृतिक चिकित्सा–पद्धति है। यही वजह है कि आज विश्व के कई देशों ने इसे स्वीकार कर लिया है। चीन में इसे सरकारी मान्यता प्राप्त है, इसलिए इसे 'चायनीज पद्धति' के नाम से भी जानते हैं।